सीमन्तोन्नयन सामग्री—१ सोपारी १। २ रोली ३ मेवा ४ घृत ५ पीलापू ६ तकुवा ७ बबूल के कांटे ८ बालू ९ कुशा १० आंबकी लकरी ११ समिधा ३ १२ चंदनका टुकड़ा १३ चंदनचूर ॥

जातकर्म की सामग्री-१ माखी २ घृत ३ सुवर्णशलाका ४ चावलों की कणि ५ सर्षप ६ कुशा

नामकर्म सामग्री—१ सोपारी १, २ रोली ३ चीनी ४ चंदनचूर ५ चंदन के टुकड़ा ६ कपूर ७ बालू ८ पुष्प ९ कुशा १० आंबकी लकड़ी ११ समिधा ३, १२ घृत १३ चांवल १४ गुड़ १५ मटी का पूर्णपात्र ॥

अन्नप्राशनसामग्री— १ बालू २ कुशा ३ पुष्प ४ आंब की लकड़ी ५ दोने ६ मटी का पूर्णपात्र ७ घृत ८ चंदन ९ भोजन ॥

चूड़ाकर्म सामग्री— १ सोपारी २ रोली ३ चंदन चूर ४ पुष्प ५ घृत ६ चंदन ७ बालू ८ कुशा ९ आंब की लकड़ी १० समिधा ३, ११ मटी का पूर्णपात्र १२ दोने १३ घृत १४ मखन १५ दही १६ बबूल के कंटक १७ गोबर ॥

उपनयन सामग्री-१ सोपारी ३, २ नारियल ३ रोली ४ चंदन चूर ५ पंचरंग ६ कपूर ७ गुड़ ८ चीनी ९ चंदन १० दोने ११ यज्ञोपवीत १२ मौला १३ आटा १४ चावल १५ कौपीन १६ मृग छाला १७ आसन १८ सरावा १९ पलाशदंड २० घृत २१ बालु २२ कुश २३ पुष्प २४ समिधा ३, २५ गोबर सूखे २६ आंबकी लकड़ी २७ आंब के पत्ते २८ मटी के दो पात्र २९ मेखला ३० मेवा ३१ फल ॥

अथ विवाह सामग्री—१ चार लाठी २ चंदोवा ३ सुतली ४ मोली ५ रोली ६ तीनसोपारी ७ नारियल ८ पंचरंग ९ चंदनचूर १० यज्ञोपवीत दो जोड़े ११ सरावा १२ चंदन १३ आसन १४ लाजा १५ शूर्प १६ दो मटी के पात्र १७ दोने १८ मेवा १९ सिंदूर २० बालू २१ कदलीस्तंभ २२ सब वृक्षों के पत्ते २३ छुरी २४ कुश २५ दूर्वा २६ पुष्प २७ शमीपत्र २८ आंबकी लकरी २९ समिधा तीन ३० दूध ३१ दही ३२ माखी ३३ आटा चावल गुड़ ३४ घृत ३५ पत्थर ३६ शंख ३७ चौकिया तीन ३८ नवीन वस्त्र

अंत्येष्टि सा०—प्रथम दिन १ चंदन २ चंदन चूर ३ पुष्प और पुष्पमाला ४ केसर ५ जौका आटा ६ कुशा ७ तिल ८ कपूर ९ बांसकी लकरी १० मट्टी का पात्र ११ घृत १२ गोबर १३ यज्ञोपवीत १४ और सुगंधित औषधी ॥

चतुर्थदिनसा०-१ मट्टीका घड़ा २ दूध ३ शमीशाखा ४ पुष्प ५ चंदनचूर ६ कपूर, ७ वस्त्र

एकादशाह सा०-१ यज्ञोपवीत ४ जोरे २ पंचगव्य के लिये दूध दही गोमूत्र, गोबर घृत ३ पांच सोपारी ४ रोली ५ केसर ६ चंदन चूर ७ पुष्प ८ मेवा ९ कपूर १० बताशे ११ बालू १२ कुशा १३ दोने १४ आंबकी लकरी १५ तीन समिधा १६ मट्टी का पात्र १७ तुलसी वृक्ष १८ मट्टीका कूंडा १९ गौ के लिये चाकिरे आदी २० केसू फल के पत्ते

द्वादशाह सा०—१ सोपारी २ रोली ३ चन्दनचूर ४ चन्दन के टुकरे ५ सामग्री ६ कपूर ७ पुष्प ८ बालू ९ कुशा १० आंब की लकड़ी ११ समिधा तीन १२ दोने १३ मटी का पात्र १४ वस्त्र का टुकड़ा १५ एक घड़ा वा तीन ॥ इति

अथ संस्कारमार्त्तण्ड-प्रस्तावः

सब महाशयों को विदित हो कि समय के परिवर्त्तन से बहुत काल से वैदिक संस्कारों का लोपसा होगया इस से हम ब्राह्मणादि लोग प्रायः धर्मकर्म हीन मलिन बुद्धि वाले होगये। यद्यपि कुछ २ संस्कारों के पुस्तक छपते और बिकते भी थे परन्तु ठीक २ पारस्कर गृह्य सूत्रके अनुकूल और नागरी भाषा सहित पुस्तक प्रायः नहीं मिलते थे। ऐसे पुस्तक का अभाव देखकर यह संस्कारमार्त्तण्ड पुस्तक छपाकर प्रकाशित किया गया। संसार में सब जड़ पदार्थों का भी संस्कार होता है। विषम भूमि को जब सम चौरस कर लीप लेसकर स्वच्छ कर लेते हैं तब विशेष कार्य साधक रोचक तथा मनोहर ग्राह्य होजाती है जिन घरों का लीपना लेसना आदि वा चूना से पोतनआदि संस्कार नहीं होता वे घृणित अग्राह्य तथा नष्टप्राय हो जाते हैं यदि संस्कार होते रहते है तो वे घर मन के प्रसन्न रखने वाले रमणीय तथा ग्राह्य होजाते हैं। रांधीहुई दाल में छोंकना बघारना एक प्रकार का संस्कार है छोंकने बघारने से उस दाल के भीतर २ सब अंशों में सुगन्धि के परमाणु व्याप्त होजाते हैं। इस कारण वह संस्कृत दाल सोंधी रोचक तथा बुद्धिशोधक होजाती है। वस्त्रों का धोना ही संस्कार है इस प्रकार सभी वस्तु अच्छा संस्कार होने से अपनी ठीक उत्तमदशा में आजाता है और ठीक २ काम का

होजाता है। इसी के अनुसार ब्राह्मणादि द्विज शरीरों के गर्भाधानादि संस्कार होने चाहिये। संस्कार शब्द का अर्थ व्याकरणानुसार शुद्धि है सो वाह्याभ्यन्तर दोनों प्रकार का संशोधन गर्भाधानादि कर्मों के यथावत् करने से होता है। वाह्य शुद्धि से अन्तःकरण–मनकी प्रसन्नता स्वच्छतारूप शुद्धि होती और उस मनः शुद्धिरूप धर्म के संचित होने से ही मनुष्य को संसार परमार्थ का सुख मिलता है इस से संस्कार अवश्य करने चाहिये। और संस्कार न होने से ब्राह्मणादि तीनोंवर्ण पतित होजाते हैं इससे संस्कारों को न छोडो। सब संस्कारोंद्वारा दो प्रकार से मनुष्य की शुद्धि होती है। एकतो आयुर्वेद के अनुसार अनेक पदार्थों का सेवन तथा भक्षण करने से जैसे कि सुश्रुत के रसायन प्रकरण में लिखा है–

गव्यमाज्यंसुवर्णंच मधुक्षौद्रंचतत्त्रयम् ॥१॥
मेध्यमायुष्यमारोग्य–पुष्टिसौभाग्यवर्धनम् ॥१॥

गौ का घृत सुवर्ण और शहत इन तीनों को मिलाकर खानेसे बुद्धि आयु नीरोगता पुष्टि–बल और सौभाग्य बढ़ता है। कुश स्वभाव से ही शुद्ध हैं उन के द्वारा मार्जन तथा आचमन से शुद्धि होती अग्नि तथा जल भी स्वभाव से ही शोधक हैं। घृतादि सुगन्ध के होम से भी श्वासद्वारा मनुष्य की शुद्धि होती है। जात कर्म में गोघृत सुवर्ण और शहत मिलाकर बच्चे को चटाया जाता है उससे सुश्रुत के लेखानुसार बुद्धि तथा आयु बढ़ता है मनुस्मृति में लिखा है कि

ज्ञानंतपोऽग्निराहारो मृन्मनोवार्युपाञ्जनम् ।
वायुःकर्मार्ककालौच शुद्धेःकर्त्तॄणिदेहिनाम् ॥

ज्ञान, तप, शुद्ध पदार्थों का भोजन, अग्नि, मट्टी, मन, जल, लीपना, वायु, कर्मकाण्ड, सूर्य, और काल ये सब पदार्थ मनुष्यादि के शोधक हैं। संस्कारों में मन्त्रों का तत्त्वार्थ शोचना जानना ज्ञान, कर्म में कष्ट सहना तप, सुवर्ण घृत शहत आदि शुद्ध पदार्थों का भोजन, अग्नि, शुद्ध मट्टी की वेदि बनाना लीपना पोतना, होम से वायु का शुद्ध होना तथा सूर्य का उपस्थान आराधन करना इस प्रकार मनुजी के कहे शोधक ज्ञानादि सभी का संग्रह संस्कारों में आजाता है इस प्रकार पदार्थविद्या के अनुसार भी संस्कार करने से मनुष्य की शुद्धि होना सिद्ध ही है। मनुस्मृ० अ० २। २६। २७।

वैदिकैःकर्मभिःपुण्यै-र्निषेकादिर्द्विजन्मनाम् ।
कार्यःशरीरसंस्कारः पावनःप्रेत्यचेहच ॥ १ ॥
गार्भैर्होमैर्जातकर्म-चौडमौञ्जीनिबन्धनैः ।
बैजिकंगार्भिकंचैनो द्विजानामपमृज्यते ॥ २ ॥

भा०-वेदोक्त पवित्र कर्मों के द्वारा ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यों को इस लोक परलोक में पवित्र करने वाला शरीरों का गर्भाधानादि संस्कार करना चाहिये। सीमन्तोन्नयनादि के समय होनेवाले होमों से तथा जातकर्म, चूडाकर्म और उपनयनादि होमों से तथा उस समय होने वाले कर्म से द्विजों का बीज सम्बन्धी तथा गर्भ सम्बन्धी दोष वा मलिनता शुद्ध होजाती है। इसलिये यथाविधि संस्कार अवश्य करने चाहिये।

अमन्त्रिकातुकार्येयं स्त्रीणामावृदशेषतः ।
संस्कारार्थंशरीरस्य यथाकालंयथाक्रमम् ॥

भा०—कन्याओं के संस्कार शुद्धि के लिये उसी २ काल में उसी २ क्रम से विना मन्त्र के करने चाहिये। केवल यज्ञोपवीत संस्कार कन्याओं का विवाह ही है। वेदोक्त कर्मों को स्वयं ठीक २ करना और क्षत्रिय वैश्यों को कराना यह हम ब्राह्मणों का कर्त्तव्य है । क्षत्रिय वैश्यों का इस में विशेष दोष नहीं है किन्तु हम लोगों ने विधिपूर्वक वेद वेदाङ्गों का पठन पाठन त्याग दिया तो जब कर्म वा संस्कारों का मर्म ही नहीं जानते फिर संस्कारों को कैसे स्वयं करें? वा अन्यों को करावें ?। इस से यह हम ब्राह्मण लोगों का ही दोष आलस्य वा मूर्खता है। अब हम को चाहिये कि फिर भी संस्कारोंको जाने वेद वेदाङ्ग पढे कर्म करें करावें तो सब का कल्याण हो। इस ग्रन्थ में शीघ्रता के कारण वा मनुष्य सर्वज्ञ नहीं इस कारण कहीं न्यूनाधिकता से त्रुटी रहिगई हो तो पाठक क्षमा करेंगे दूसरी आवृत्ति में पूर्ति की जायगी।

आपका मुसाफिर ग्रन्थकार



श्रीहरिः ।

अथ संस्कारमार्त्तण्डः ॥

सर्वसंस्कारादिश्रौतस्मार्त्तकर्मणामधिष्ठात्रे सर्वकर्मफल
दात्रे सर्वत्रव्यापिने सर्वनियन्त्रे सर्वस्वामिने
श्रीकृष्णपरमात्मने नमः ॥

कुर्वन्नेवेहकर्माणि जिजीविषेच्छतꣳसमाः ।
एवंत्वयिनान्यथेतोऽस्ति नकर्मलिप्यतेनरे ॥१॥

अथ गर्भाधानम् ॥

मूलम्-तामुदुह्य यथर्तुप्रवेशनम् ॥ ७ ॥ यथाकामी वा काममाविजनितोः । सम्भवामेति वचनात् ॥८॥ इत्यादि ॥ पारस्करगृह्यसूत्र १ का० ११ क० ॥

अथ प्रयोगः-ऋतुकाले रजोदर्शने सञ्जाते चतुर्थादिसमदिने पुण्याहे गर्भाधाननिमित्तं (मातृपूजापूर्वकं स्वयमाभ्युदयिकं कृत्वा) षोडशरात्रादर्वाक् रात्रौ दक्षिणकरेण पतिर्वध्वाउपस्थमभिस्पृश्य जपति ॥

ओम् पूषा भगꣳसविता मे ददातु रुद्रः कल्पयतु ललामगुम् । विष्णुर्योनिं कल्पयतु

भावार्थ-प्रथम गर्भाधान संस्कार का विचार दिखाते हैं । ऋतुकाल में चौथे छठे आठवें दशवें वा बारहवें दिन स्त्री स्नान कर शुद्ध हो और शुभ (चन्द्र बुध बृहस्पति शुक्र) पुण्य दिन में पति गर्भाधानार्थ मातृपूजा और आभ्युदयिक करके रात्रि में ऊपर संस्कृत में लिखे अनुसार किसी पण्डित विद्वान् से एकान्त

त्वष्टा रूपाणि पिंशतु । आसिञ्चतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते ॥

इति मन्त्रेण । अथ प्राङ्मुखउपविष्टउदङ्मुखो वा एतामभिमन्त्रयेदनेन–

ओम् गर्भं धेहि सिनीवालि ! गर्भं धेहि पृथुष्टुके ! । गर्भं ते अश्विनौ देवावाधत्तां पुष्करस्रजौ ॥ ततः–ओम् रेतो मूत्रं विजहाति योनिं प्रविशदिन्द्रियम् । गर्भो जरायुणावृतउल्वं जहाति जन्मना ॥

इति मन्त्रेण रेतःस्रावणम् । अथ तस्या हृदयमालभेत–

ओम् यत्ते सुसीमे ! हृदयं दिवि चन्द्रमसि श्रितम् । वेदाहं तन्मां तद्विद्यात्पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतᳬं शृणुयाम शरदः शतम् ॥

इति मन्त्रेण । ततः स्वस्थो हृष्टमना हृद्देशे प्रसन्नामनातुरां कामयमानामभग्नशय्याया प्रदोषादूर्ध्वं स्त्रियमभिगच्छेत् ॥ इति गर्भाधानम् ॥

में पढ समझ के स्वयं गर्भाधान का कृत्य करे । भाषा में इस का विशेष व्या ख्यान लिखना उचित नहीं समझा गया । इस में पण्डित पुरोहित का कु काम नहीं किन्तु वही गर्भाधान करने वाला पुरुष स्वयं सब करे । मानवगृ और आभ्युदयिक सूत्र में नहीं है ॥ इति गर्भाधान समाप्तम् ॥

अथ पुंसवनम् ॥

मूलम्–अथ पुंसवनम् १ पुरास्यन्दतइति मासे द्वितीये तृतीये वा २ इत्यादि पा० का० १ क० १४ ॥

प्रयोगः–तत्र गर्भाधानप्रभृतिद्वितीये तृतीये वा मासे यस्मिन्दिने पुन्नक्षत्र [पुष्य पुनर्वसु मृगशिरो हस्त मूल श्रवण] युक्तश्चन्द्रस्तस्मिन्नहनि गर्भिणीमुपवासं कारयित्वा तां स्नपयित्वाऽहते वाससी परिधाप्य (मातृपूजाभ्युदयिके) कृत्वा वटप्ररोहं वटशुङ्गांश्च आचारात् कुशकंटकमपि शिशिरेण जलेन पिष्ट्वा वधूदक्षिणनासापुटे तद्रसं दद्यात्–

ओम्–हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् । स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥१॥ ओं–अद्भ्यः संभृतः पृथिव्यै रसाच्च विश्वकर्मणः समवर्त्तताग्रे। तस्य त्वष्टा विदधद्रूपमेति तन्मर्त्यस्य देवत्वमाजानमग्रे ॥२॥

इति मंत्राभ्याम् ॥ इति पुंसवनम् ॥ २ ॥

अथ पुंसवनम्–गर्भाधान से दूसरे वा तीसरे महिने में जिस दिन पुष्य पुनर्वसु, मृगशिरा, हस्त, मूल, श्रवण इन में से किसी नक्षत्र से युक्त चन्द्रमा हो उस से पूर्व दिन में गर्भिणी स्त्री को उपवास कराके अगले दिन स्नान कराके नये बिना फटे शुद्ध दो वस्त्र पहिना कर स्नान कर शुद्ध हुआ पुरुष आचमन करके मातृपूजा और आभ्युदयिक करने पश्चात् वटारोह (वटकी जटा) वटशुङ्गा और आचार से कुश के कांटों को ठण्ढे जल में पीस कर वधू के दहिने नासिका के छिद्र में उक्त ओषधियों का रस (हिरण्यगर्भः०) इत्यादि दो मन्त्रों से सुंघावे ॥

इति पुंसवनम् ॥

अथसीमन्तप्रयोगः ।

मूलम्–अथ सीमन्तोन्नयनम् १ पुंसवनवत् २ प्रथमगर्भे मासे षष्ठेऽष्टमे वा ३ पारस्करगृ० इत्यादि ॥ अथप्रयोगः

तत्र गर्भमासापेक्षया षष्ठेऽष्टमे वा पुन्नामनक्षत्रयुतचन्द्रे दिने मातृपूजाभ्युदयिके कृत्वा बहिः शालायां कुशकण्डिकां कुर्यात् । तत्र क्रमः–कुशत्रयेण हस्तपरिमितचतुरस्रभूमिं परिसमुह्य कुशानैशान्यां निक्षिप्य गोमयोदकेनोपलिप्य स्रुवमूलेन स्फ्येन वोत्तरोत्तरतस्त्रिरुल्लिख्योल्लेखनक्रमेणानामिकाङ्गुष्ठाभ्यां मृदमुद्धृत्य वारिणा तं देशमभिषिच्य कांस्यपात्रेणाग्निमादाय तत्प्रत्यङ्मुखं निदध्यात् । ततो ब्रह्मवरणम्–

ओम्–अद्य कर्तव्यसीमन्तोन्नयनहोमकर्मणि कृताकृतावेक्षणरूपब्रह्मकर्म कर्तुममुकगोत्रममुकशर्माणं ब्राह्मणमेभिः पुष्पचन्दन-

---

अथ सीमन्तोन्नयनम्–पुंसवन में कहे नक्षत्रों से युक्त चन्द्रमा जिस दिन हो उस दिन पहिले गर्भ में छठे वा आठवें महिने में सीमन्तकर्म करे । मण्डप बनाकर उस में १ हाथ लम्बी चौड़ी चौकोन वेदि बनावे । वेदि में पञ्चभूसंस्कार करे–तीन कुशों से वेदि भूमि को झाड़ कर कुशों को ईशान कोण में फेंक कर गोबर और जल से लीप कर स्रुवा के मूल वा स्फ्य से उत्तर २ वेदि में प्रागायत तीन रेखा करे । अनामिका और अंगुष्ठ से रेखाओं में से मट्टी को उठाकर फेंक के वेदि में जल सेचन करे । कांसे के वा मट्टी के पात्रमें अग्नि लाकर पश्चिमाभिमुख स्थापन करे । तत्पश्चात्–पुष्प चन्दन ताम्बूल और वस्त्रों को लेकर (ओमद्य० इत्यादि वाक्य पढ़ के यजमान ब्रह्मा का वरण करे और पुष्पादि ब्रह्मा के हाथ

ताम्बूलवासोभिर्ब्रह्मत्वेन त्वामहं वृणे। ओम् वृतोऽस्मीति प्रतिवचनम्॥ ओम् यथाविहितं कर्म कुर्विति होत्राभिहिते। ओम् करवाणि।

इति प्रतिवचनान्तरं—अग्नेर्दक्षिणतः शुद्धमासनं दत्त्वा तदुपरि प्रागग्रान्कुशानास्तीर्यास्मिन्सीमन्तोन्नयनहोमकर्मणि त्वं मे ब्रह्मा भवेत्यभिधाय। ओम् भवानीति तेनोक्ते—अग्निप्रदक्षिणं कारयित्वा। ब्रह्माणं तत्रोपवेश्य प्रणीतापात्रं पुरतः कृत्वा जलेनापूर्य कुशैराच्छाद्य ब्रह्मणो मुखमवलोक्याग्नेरुत्तरतः कुशोपरि निदध्यात्। ततः परिस्तरणम्—बर्हिषश्चतुर्थभागमादायाग्नेयादीशानान्तं ब्रह्मणोऽग्निपर्यन्तं नैर्ऋत्याद्वायव्यान्तम्। अग्नितः प्रणीतापर्यन्तम्। ततोऽग्नेरुत्तरतः पश्चिमदिशि पवित्रच्छेदनार्थं कुशत्रयं पवित्रकरणार्थं साग्रमनन्तर्गर्भं कुशपत्रद्वयं प्रोक्षणीपात्रमाज्यस्थाली चरुस्था-

---

में देवे। ब्रह्मा पुष्पादि को लेकर (वृतोऽस्मि) कहे। तब (यथावि०) यजमान कहे और ब्रह्मा (करवाणि०) कहे। तब अग्नि से दक्षिण में शुद्ध आसन चौकी आदि बिछाकर उस पर पूर्व को जिनका अग्रभाग हो ऐसे कुश बिछाकर ब्रह्मा को अग्नि की प्रदक्षिणा कराके (अस्मिन् कर्मणि त्वं मे ब्रह्मा भव) इस कर्म में तुम मेरे ब्रह्मा हो ऐसा कहकर ब्रह्मा के (भवानि) कहने पर उस आसन पर ब्रह्मा को उत्तराभिमुख बैठाकर प्रणीतापात्र को सामने रख के जल से भर के कुशों से आच्छादन कर ब्रह्मा का मुख अवलोकन करके अग्नि से उत्तर कुशों पर प्रणीतापात्र को प्रागग्र रक्खे। तदनन्तर चार मुट्ठी कुश लेकर अग्नि के सब ओर परिस्तरण करे-एक चौथाई कुश अग्निकोण से ईशानदिशा तक, द्वितीय भाग ब्रह्मा के आसन से अग्निपर्यन्त, तृतीयभाग नैर्ऋतकोण से वायुकोण पर्यन्त चौथा अग्नि से प्रणीता पर्यन्त बिछावे। तदनन्तर अग्नि से उत्तर में पात्रसंस्थ पात्रासादन करे। पवित्र छेदनार्थ तीन कुश तथा पवित्रकरणार्थ अग्रभाग सहित

ली संमार्जनकुशाउपयमनकुशाः प्रादेशमितपालाशसमिध-
स्तिस्रः स्रुव आज्यं तण्डुलपूर्णपात्रं तिलमुद्गमिश्रास्तंडुलाः।
एतानि पवित्रच्छेदनकुशानां पूर्वपूर्वदिशिक्रमेणासादनीया-
नि । तदुत्तरतः वीणागाथिनौ प्रादेशमात्रसाग्राश्वत्थशंकुः,
त्रिश्वेतशल्लकीकण्टकं पीतसूत्रपूर्णस्तर्कुः, दर्भपिञ्जूलिकात्र-
यमुदुम्बरयुग्मफलसुवर्णघटितप्रादेशमितशाखा । एतत्सर्व-
मासाद्यपवित्रच्छेदनार्थकुशैः प्रादेशमितपवित्रे छित्वा सप-
वित्रपाणिना प्रणीतोदकं त्रिः प्रोक्षणीपात्रे कृत्वा—अनामि-
काङ्गुष्ठाभ्यामुत्तराग्रे पवित्रे गृहीत्वा त्रिरुदिङ्गनं प्रणीतो-
दकेन प्रोक्षणीप्रोक्षणं ततः प्रोक्षणीजलेन यथासादितद्रव्य-
सेचनं ततोऽग्निप्रणीतयोर्मध्ये प्रोक्षणीपात्रनिधानं तत आ-
ज्यस्थाल्यामाज्यनिर्वापः, चरौ तु तिलतण्डुलमुद्गानां प्रणी-

जिन के भीतर अन्य कुश न हो ऐसे दो कुश, प्रोक्षणीपात्र, आज्यस्थाली, चरु स्थाली संमार्जनकुश, उपयमनकुश, ढांक की तीन समिधा, स्रुव, आज्य, चावलों से भरा एक पूर्णपात्र, तिल मूग मिले चरु के लिये चावल, पवित्र छेदन कुशों से पूर्व पूर्व क्रम से उत्तर को अग्रभाग कर २ इन सब का स्थापन करे । उस. से उत्तर में दो वीणा पर गाने वाले १ पीपल की खूंटी । तीन जगह श्वेत १ सेही का कांटा, पीले सूत से लपेटा १ तकुआ, ३ दाभ की पिंजूली, उदुम्बर के दो फलो सहित प्रादेशमात्र उदुम्बर की शाखा इन सब का आसादन करके पवित्रछेदनार्थ तीन कुशों से प्रादेशमात्र दो कुशों का छेदन करके पवित्र सहित दहिने हाथ से प्रणीता के जल को तीन बार प्रोक्षणीपात्र में डाल कर अना- मिका और अङ्गुष्ठ से पकड़े हुये पवित्रों से उस प्रोक्षणीस्थ जलका उत्पवन करे और प्रणीता के जल से प्रोक्षणीस्थ जल का पवित्रो द्वारा तीन बार अभिसेचन कर के प्रोक्षणीपात्र के जल से आसादन किये आज्यस्थाली आदि का सेचन करके अग्नि और प्रणीतापात्र के बीच में प्रोक्षणीपात्र को रख देवे । तब आ- ज्यस्थाली में घृतपात्र से घृत गिरावे और चरुपात्र में तिल चावल और मूं

तोदकेन त्रिःप्रक्षालनं तत्र किंचिज्जलं दत्त्वा तण्डुलप्रक्षेपः। ततः स्वयं चरुं गृहीत्वा ब्रह्मणाचाज्यं ग्राहयित्वा वह्नेरुपर्य्युत्तरतश्चरुं दक्षिणत आज्यं युगपन्निदध्यात्। ततः सिद्धे चरौ ज्वलत्तृणं प्रदक्षिणं भ्रामयित्वा वह्नौ तत्प्रक्षेपः। ततः स्रुवप्रतपनं त्रिः। ततः संमार्जनकुशानामग्रैरन्तरतो मूलैर्बाह्यतः स्रुवं संमृज्य प्रणीतोदकेनाभ्युक्ष्य पुनस्त्रिःप्रतप्य दक्षिणतो निदध्यात्। तत आज्यमग्नितउद्वास्य चरोः पूर्वेणानीयाग्रे धृत्वा आज्यपश्चिमेन चरुमानीयाज्यस्योत्तरतो निदध्यात्। तत आज्ये प्रोक्षणीवदुत्पवनम्। अवेक्ष्य सत्यपद्रव्ये तन्निरसनं ततः पूर्ववत्प्रोक्षण्युत्पवनं ततउत्थायोपयमनकुशानादाय प्रजापतिं मनसा ध्यात्वा तूष्णीमग्नौ घृताक्ताः समिधः क्षिपेत्

डाल के प्रणीता के जल से तीन वार धोकर प्रणीता के थोड़े जल सहित स्वयं चरु को ले के और ब्रह्मा आज्य को लेकर अग्नि के भीतर उत्तर में चरु और दक्षिण में आज्य को एक साथ अग्नि पर पकने को रक्खें तदनन्तर चरु पक जाने पर सूखे कुश जलाकर घी और चरु के ऊपर प्रदक्षिण भ्रमण कराके अग्नि में जलते कुश फेंक कर स्रुवा को तीन वार अग्नि में तपा के संमार्जन कुशो के अग्रभाग से भीतर को और कुशों के मूलभाग से बाहर की ओर स्रुवा को झाड़ पोंछ शुद्धकर तपा प्रणीता के जल से सेचन करके और फिर तीन वार तपा के अग्नि से दक्षिण की ओर स्रुवा को धर देवे । तत्पश्चात् तपते हुए घी को अग्नि से उतार के चरु से पूर्व की ओर से लाकर सामने धरे और आज्य के पश्चिम की ओर से चरु को अग्नि उतार आज्य से उत्तर में धरे। तब तीन वार प्रोक्षणी के तुल्य पवित्रों से घी का उत्पवन करके देखे यदि घृत में कुछ निकृष्ट वस्तु हो तो निकाल कर फेंक देवे और फिर तीन वार प्रोक्षणीपात्र का उत्पवन करे। तदनन्तर उठ कर उपयमनकुशों को वाम हाथ में लेके प्रजापति का मन से ध्यान करके घृत में डुबोई तीन समिधाओं को तूष्णीं बिना मन्त्र पढ़े एक २ कर अग्नि में चढ़ावे। फिर बैठ कर पवित्र सहित प्रोक्षणी के जल को

ली संमार्जनकुशाउपयमनकुशाः प्रादेशमितपालाशसमिध-
स्तिस्त्रः स्रुवं आज्यं तण्डुलपूर्णपात्रं तिलमुद्गमिश्रास्तंडुलाः।
एतानि पवित्रच्छेदनकुशानां पूर्वपूर्वदिशिक्रमेणासादनीया-
नि । तदुत्तरतः वीणागाथिनौ प्रादेशमात्रसाग्राश्वत्थशंकुः,
त्रिश्वेतशल्लकीकण्टकं पीतसूत्रपूर्णस्तर्कुः, दर्भपिञ्जूलिकात्र-
यमुदुम्बरयुग्मफलसुवर्णघटितप्रादेशमितशाखा । एतत्सर्व-
मासाद्यपवित्रच्छेदनार्थकुशैः प्रादेशमितपवित्रे छित्वा सप-
वित्रपाणिना प्रणीतोदकं त्रिः प्रोक्षणीपात्रे कृत्वा—अनामि-
काङ्गुष्ठाभ्यामुत्तराग्रे पवित्रे गृहीत्वा त्रिरुदिङ्गनं प्रणीतो-
दकेन प्रोक्षणीप्रोक्षणं ततः प्रोक्षणीजलेन यथासादितद्रव्य-
सेचनं ततोऽग्निप्रणीतयोर्मध्ये प्रोक्षणीपात्रनिधानं तत आ-
ज्यस्थाल्यामाज्यनिर्वापः, चरौ तु तिलतण्डुलमुद्गानां प्रणी-

जिन के भीतर अन्य कुश न हो ऐसे दो कुश, प्रोक्षणीपात्र, आज्यस्थाली, चरु-
स्थाली संमार्जनकुश, उपयमनकुश, ढांक की तीन समिधा, स्रुव, आज्य, चावलों
से भरा एक पूर्णपात्र, तिल मूंग मिले चरु के लिये चावल, पवित्र छेदन कुशों
से पूर्व पूर्व क्रम से उत्तर को अग्रभाग कर २ इन सब का स्थापन करे । उन
से उत्तर में दो वीणा पर गाने वाले १ पीपल की खूंटी । तीन जगह श्वेत १
सेही का कांटा, पीले सूत से लपेटा १ तकुआ, ३ दाभ की पिंजूली, उदुम्बर
के दो फलो सहित प्रादेशमात्र उदुम्बर की शाखा इन सब का आसादन करके
पवित्रछेदनार्थ तीन कुशो से प्रादेशमात्र दो कुशों का छेदन करके पवित्र सहित
दहिने हाथ से प्रणीता के जल को तीन बार प्रोक्षणीपात्र में डाल कर अना-
मिका और अङ्गुष्ठ से पकड़े हुये पवित्रों से उस प्रोक्षणीस्थ जलका उत्पवन करे
और प्रणीता के जल से प्रोक्षणीस्थ जल का पवित्रों द्वारा तीन बार अभिसेचन
कर के प्रोक्षणीपात्र के जल से आसादन किये आज्यस्थाली आदि का सेचन
करके अग्नि और प्रणीतापात्र के बीच में प्रोक्षणीपात्र को रख देवे । तब आ-
ज्यस्थाली में घृतपात्र से घृत गिरावे और चरुपात्र में तिल चावल और मूंग

तोदकेन त्रिःप्रक्षालनं तत्र किंचिज्जलं दत्त्वातण्डुलप्रक्षेपः। ततः स्वयं चरुं गृहीत्वा ब्रह्मणाचाज्यं ग्राहयित्वा वह्नेरुपर्युत्तरतश्चरुं दक्षिणत आज्यं युगपन्निदध्यात्। ततः सिद्धे चरौ ज्वलत्तृणं प्रदक्षिणं भ्रामयित्वा वह्नौ तत्प्रक्षेपः। ततः स्रुवप्रतपनं त्रिः। ततः संमार्जनकुशानामग्रैरन्तरतो मूलैर्बाह्यतः स्रुवं संमृज्य प्रणीतोदकेनाभ्युक्ष्य पुनस्त्रिःप्रतप्य दक्षिणतो निदध्यात्। ततआज्यमग्नितउद्वास्यचरोः पूर्वेणानीयाग्रे धृत्वा आज्यपश्चिमेन चरुमानीयाज्यस्योत्तरतो निदध्यात्। ततआज्ये प्रोक्षणीवदुत्पवनम्। अवेक्ष्य सत्यपद्रव्ये तन्निरसनं ततः पूर्ववत्प्रोक्षण्युत्पवनं ततउत्थायोपयमनकुशानादाय प्रजापतिं मनसा ध्यात्वा तूष्णीमग्नौ घृताक्ताः समिधः क्षिपेत्

डाल के प्रणीता के जल से तीन वार धोकर प्रणीता के थोडे जल सहित स्वय चरु को ले के और ब्रह्मा आज्य को लेकर अग्नि के भीतर उत्तर में चरु और दक्षिण में आज्य को एक साथ अग्नि [illegible] पकने को रक्खें तदनन्तर चरु पक जाने पर सूखे कुश जलाकर घी और [illegible] न [illegible] का [illegible] प्रदक्षिण भ्रमण कराके अग्नि में जलते कुश फेंक कर स्रुवा [illegible] में तपा के संमार्जन कुशो के अग्रभाग से भीतर की ओर [illegible] शा के मू [illegible] भाग से बाहर की ओर स्रुवा को झाड पोंछ शुद्धकर तपा प्रणीता के जल से सेचन करके और फिर तीन वार तपा के अग्नि से दक्षिण की ओर स्रुवा को धर देवे। तत्पश्चात् तपते हुए घी को अग्नि से उतार के चरु से पूर्व की ओर से लाकर सामने धरे और आज्य के पश्चिम की ओर से चरु को अग्नि उतार आज्य से उत्तर में धरे। तब तीन वार प्रोक्षणी के तुल्य पवित्रो से घी का उत्पवन करके देखे यदि घृत में कुछ निकृष्ट वस्तु हो तो निकाल कर फेंक देवे और फिर तीन वार प्रोक्षणीपात्र का उत्पवन करे। तदनन्तर उठ कर उपयमनकुशो को वाम हाथ में लेके प्रजापति का मन से ध्यान करके घृत में डुबोई तीन समिधाओं को तूष्णीं विना मन्त्र पढे एक २ कर अग्नि में चढावे। फिर बैठ कर पवित्र सहित प्रोक्षणी के जल को

अथोपविश्य सपवित्रप्रोक्षणीजलेनाग्निं प्रदक्षिणक्रमेण पर्युक्ष्य प्रणीतापात्रे पवित्रे धृत्वा ब्रह्मणान्वारब्धः पातितदक्षिणजानुःसमिद्धतमेऽग्नौ जुहुयात् । तत्राहुतिचतुष्टये प्रत्याहुत्यनन्तरं हुतशेषस्य घृतस्य प्रोक्षणीपात्रे प्रक्षेपः ॥

ओ३म्–प्रजापतयेस्वाहा। इदंप्रजापतयेनमम

इतिमनसा

ओ३म्–इन्द्रायस्वाहा। इदमिन्द्राय० इत्याघारौ

ओ३म्–अग्नये स्वाहा इदमग्नयेनमम ।

ओ३म् सोमायस्वाहा। इदं सोमायनमम ।

इत्याज्यभागौ। ततोब्रह्मणाऽन्वारम्भे कृते स्थालीपाकेन होमः-

ओ३म्–प्रजापतये स्वाहा । इदं प्रजापतये०

इति मनसा । ततोऽनन्वारब्धो जुहुयात् । तत्तदाहुत्यनन्तरं स्रुवावस्थितहुतशेषस्य प्रोक्षण्यां प्रक्षेपः। तत्रैवाज्यस्थालीपाकाभ्यां स्विष्टकृद्धोमः–

ओम् अग्नये स्विष्टकृतेस्वाहा। इदमग्नये स्विष्टकृते नमम । ओम् भूः स्वाहा। इद-

---

प्रदक्षिणक्रम से ईशानकोण से लेकर उत्तर दिशा तक अग्नि के सब ओर सेचन करे अर्थात् प्रोक्षणीपात्र का सब जल पर्युक्षण में गिरा देवे। प्रणीतापात्र में दोनों पवित्र रखके प्रोक्षणीपात्र का विसर्जन करे। तदनन्तर दहिने घोंटू को भूमि में टेक कर ब्रह्मा से अन्वारब्ध हुआ यजमान प्रज्वलित अग्नि में स्रुवा से आज्याहुतियों का होम करे। वहां २ उस २ आहुति देने पश्चात् स्रुवा में जो घृतविन्दु बचें उन को प्रोक्षणीपात्र में डालता जावे। प्रजापति का ध्यान कर पूर्वाघार की तूष्णीं आहुति देवे। त्याग सब यजमान स्वयं बोलता जाय।

मग्नये नमम । ओम् भुवः स्वाहा । इदं वायवे नमम । ओम् स्वः स्वाहा । इदं सूर्याय नमम ॥ एता महाव्याहृतयः ॥ ओं त्वन्नो अग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेडो अवयासिसीष्ठाः । यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषाथंसि प्रमुमुग्ध्यस्मत्स्वाहा । इदमग्नीवरुणाभ्यां नमम । ओं स त्वन्नो अग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठो अस्या उषसो व्युष्टौ । अवयक्ष्व नो वरुणथं रराणो वीहि मृडीकथं सुहवो न एधि स्वाहा । इदमग्नीवरुणाभ्यां नमम । ओं अयाश्चाग्नेऽस्यनभिशस्तिपाश्च सत्यमित्त्वमया असि । अया नो यज्ञं वहास्यया नो धेहि भेषजथंस्वाहा । इदमग्नये नमम । ओं ये ते शतं वरुण ये सहस्रं यज्ञियाः पाशा वितता महान्तः । तेभिर्नो अद्य सवितोत विष्णुर्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्काः स्वाहा । इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्यो मरुद्भ्यः स्वर्केभ्यश्च नमम ।

आघार की दो आज्यभाग की दो और महाव्याहृतियों की तीन सर्वप्रायश्चित्त की पांच तथा प्राजापत्य और स्विष्टकृत् दो सब चौदह आहुति त्यागों सहित

ओं उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं
स्यमथ श्रथाय । अथावयमादित्य व्रते त
नागसो अदितये स्याम स्वाहा । इदं
य नमम । इति सर्वप्रायश्चित्तम ।

ओं प्रजापतये स्वाहा । इदं प्रजापतये नमम ।

इति प्राजापत्यम् । अथ संस्रवप्राशनम् । तत आच

ओं अद्यैतस्मिन् सीमन्तोन्नयनहोमकर्मणि
ताकृतावेक्षणरूपब्रह्मकर्मप्रतिष्ठार्थमिदं पूर्ण
पात्रं प्रजापतिदैवतममुकगोत्रायाऽमुकशर्म-
णे ब्राह्मणाय ब्रह्मणे दक्षिणां तुभ्यमहं सं-
प्रददे । ओं स्वस्तीति प्रतिवचनम् । ततः—

ओं सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु ।

इति पवित्राभ्यां प्रणीताजलेन शिरः संमृज्य—

ओं दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान्द्वेष्टि
यं च वयं द्विष्मः । इत्यैशान्यां प्रणीतान्युब्जीकर-
णम् । ततः—स्तरणक्रमेण वर्हिरुत्थाप्याज्येनाभिघार्य—

देके संस्रवप्राशन कर हाथ धो आचमन करके ब्रह्मा को दक्षिणा देवे उस में (ओम
द्यैतस्मिन्०) इत्यादि संकल्प पढ़े। और ब्रह्मा (ओम्—स्वस्ति०) कह कर दक्षिणा
लेवे । तदनन्तर पवित्रों द्वारा प्रणीता का जल लेकर (ओ सुमित्रि०) मन्त्र पढ़
के अपने शिर पर जलसेचन करके (ओ दुर्मित्रिया०) मन्त्र से प्रणीता के जल
को ईशान दिशा में लौट देवे और पवित्रों को बिछाये हुए कुशों में मिला देवे
तब जिस क्रम से कुश बिछाये थे उसी क्रम से पवित्रों सहित उठाकर कुशों में

ओं देवा गातुविदो गातुं वित्त्वा गातुमित। मनसस्पत इमं देवयज्ञꣳ स्वाहा वातेधाः स्वाहा ॥ इदं वाताय नमम ॥

इति मन्त्रेण वर्हिर्होमः। ततः—पश्चादग्नेर्वधूमहतवाससी परिधाप्य मृद्वासने उपवेशयेत। ततस्त्रिश्वेतशल्लकीकण्टकाश्वत्थशङ्कुपीततन्तुतर्कुदर्भपिंजूलीत्रितयोदुम्बरफलयुग्मान्वितप्रादेशमितशाखाभिर्वर्तुलीकृत्य सीमन्तं मूर्धनि विनयति—

ओं भुर्भुवः स्वर्विनयामि। इति मन्त्रेण सकृत्, ओं भूर्विनयामि। ओं भुवर्विनयामि। ओं स्वर्विनयामि।

इति मन्त्रैर्वारत्रयं तत—उदुम्बरफलयुग्मान्वितशल्लकीकण्टकादिपंचकं वधूसीमन्तदक्षिणतो वेणीकृत्वा—अयमूर्जेति मन्त्रेण पतिर्बध्नाति—

ओं अयमूर्जावतो वृक्ष उर्जीव फलिनीभव।

घी लगा के हाथ से ही कुशों का होम (ओं देवा गातुवि०) मन्त्र पढ़ के स्वाहा के साथ कर देवे। तदनन्तर अग्नि से पश्चिम में वधू को नये शुद्ध दो वस्त्र पहिना कर कोमल आसन पर बैठावे। तत्पश्चात् तीन स्थानों में श्वेत सेही का कांटा, पीपल की खूंटी, पीले सूत से लपेटा तकुआ, कुश की बंधीहुई तीन पिंजूली, गूलर के दो फलों से युक्त शाखा में सेही के कांटे आदि को लपेट के वधू के मूर्द्धास्थान में मांग भरे। (ओंभूर्भुवः०) इत्यादि चार मन्त्रों से चार चार मांग भरे तदनन्तर पति वधू के सीमन्त के दहिनी ओर के बालों की चोंट के साथ गूलर के दो फलों से युक्त सेही के कांटे आदि पांचों को (अयमूर्जा०) मन्त्र से बांध

ततउदुम्बरफलादिसमन्वितसूत्रडोरकं वधूग्रीवायामनेनैव क्रमेण बध्नीयात् । राजानौ संगायेतामितिप्रैषानन्तरं–सोमएव नो राजेमा मानुषीः प्रजाः । अविमुक्तचक्र आसीरंस्तीरे तुभ्यमसौ । श्री अमुकदेवि ! इति गाथा वीणागाथिनौ गायतः । अन्यो वा वीरतरः । ततो या ग्रामसन्निहितनदी तस्या नाम गृह्णीयात् । तत उत्थाय वधूदक्षिणकरेण स्रुवस्पृष्टेन फलपुष्पसमन्वितघृतेन–

ओं मूर्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृतआजातमग्निम् । कविꣳ सम्राजमतिथिं जनानामासन्नापात्रं जनयन्त देवाः स्वाहा ॥ इति मन्त्रेण ।

ओं पूर्णा दर्वि परापत सुपूर्णा पुनरापत । वस्नेवविक्रीणावहा इषमूर्जꣳ शतक्रतोस्वाहा ॥

इत्यनेन च पूर्णाहुतिं दत्वोपविश्य स्रुवेण भस्मानीय दक्षिणकरानामिकाग्रगृहीतभस्मना–

ओं त्र्यायुषं जमदग्नेः । इति ललाटे । ओं

देवे । तिस पीछे गूलर के फलादि युक्त सूत के डोरा को पति वधू की ग्रीवा में बांधे । तदनन्तर यजमान वीणा पर गाने वालो से कहे कि (राजानं संगायेताम्) तब दो वीणा बजाने वाले (सोमएवनो०) इत्यादि मन्त्र को वीणा पर गावें मन्त्रान्त से असौपद को छोड़ के उस के स्थान में स्त्री का सम्बोधन नाम बोलें । तदनन्तर जो गांव के समीप में नदी हो उस का नाम लेवे । तिस पीछे फल पुष्प समन्वित घृतसे भरे स्रुवाको वधूके दहिने हाथसे स्पर्श कराके (मूर्द्धानं०) मन्त्र से तथा (पूर्णादर्वि०) मन्त्र से पूर्णाहुति दिलावे । तदनन्तर दहिने हाथ की अनामिका के अग्रभाग से कुण्ड की भस्म लेके (त्र्यायुषं०) से ललाट में (क-

कश्यपस्य त्र्यायुषम्। इति ग्रीवायाम्। ओं यद्देवेषु त्र्यायुषम्। इति दक्षिणबाहुमूले। ओं तन्नो अस्तु त्र्यायुषम्। इति हृदि।

इति त्र्यायुषं कुर्यात्। अनेनैव क्रमेण वध्वा अपि त्र्यायुषं कुर्यात्। तत्र तत्ते अस्तु त्र्यायुषम्–इति विशेषः॥ ततो ब्राह्मणभोजनम्॥ इति सीमन्तकर्म समाप्तम्॥३॥

अथ जातकर्म॥

तत्र प्रथमं शूलवतीमद्भिः परिषिञ्चेत्–

ओम्–एजतु दशमास्यो गर्भो जरायुणा सह। यथायं वायुरेजति यथा समुद्र एजति। एवायं दशमास्यो अस्रज्जरायुणा सह॥

इति मन्त्रेण। ततो वधूसमीपे पतिर्ज्जपति॥

ओ३म्–अवैतु पृश्निशेवलꣳ शुने जराय्वत्तवे नैव माꣳसेन पीवरीं न कस्मिंश्चनायतनमवजरायु पद्यतामिति॥

पपस्य०) से ग्रीवा में (यद्देवेषु०) से दहिने बाहु के मूल में और (तन्नोअस्तु०) हृदय में भस्म लगावे। इसी क्रम से वधू के भी त्र्यायुष करे परन्तु वधू के भस्म लगाने समय (तन्नो) के स्थान में (तत्ते) मन्त्र में कहे। तदनन्तर ब्राह्मण भोजन करावे। इति सीमन्तोन्नयनम्॥

अथ जातकर्म—प्रथम जब गर्भवती स्त्री के पेट में सन्तानोत्पत्ति की पीड़ा होने लगे तब पति (एजतु दशमास्यो०) मन्त्र पढ के स्त्री के शरीर पर मार्जन करे। फिर गर्भिणी पत्नी के समीप बैठकर पति (अवैतु०) मन्त्र पढ़े। तदनन्तर

ततः पुत्रे जाते नाभिवर्धनीयात्प्राक् कुमारं दक्षिणकरस्यानामिकया स्वर्णान्तर्हितया मधुघृते एकीकृते घृतमेव वा वक्ष्यमाणमन्त्रैः प्राशयति—

ओ३म्—भूस्त्वयि दधामि। ओ३म् भुवस्त्वयि दधामि। ओ३म्—स्वस्त्वयि दधामि। ओ३म्—भूर्भुवःस्वः सर्वं त्वयि दधामि ॥

इति मन्त्रैः ॥ एतच्च मेधाजननम् ॥ ततः कुमारस्य दक्षिण कर्णे नाभ्यां वा मुखं दत्वा जपेत्—

ओ३म्—अग्निरायुष्मान्त्स वनस्पतिभिरायुष्माँस्तेन त्वाऽऽयुषाऽऽयुष्मन्तं करोमि ॥१॥ ओ३म्—सोम आयुष्मान्त्स ओषधीभिरायुष्माँस्तेन त्वाऽऽयुषाऽऽयुष्मन्तं करोमि ॥ २ ॥ ओ३म्—ब्रह्मायुष्मत्तद्ब्राह्मणैरायुष्मत्तेन त्वाऽऽयुषाऽऽयुष्मन्तं करोमि ॥ ३ ॥ ओ३म्—देवा आयुष्मन्तस्तेऽमृतेनायुष्मन्तस्तेन त्वाऽऽयुषाऽऽयुष्मन्तं करोमि ॥४॥ ओ३म्—ऋषय आ-

---

पुत्र के उत्पन्न होनेपर नाल काटने से पहिले दहिने हाथ की अनामिका अङ्गुली के अग्रभाग में सुवर्ण लगा के सुवर्ण सहित अङ्गुली से शहद और घी को मिला के (ओम्भूस्त्वयि०) इत्यादि चार मन्त्रों से बालक को थोड़ा२ वारंवार चटावे इस को मेधाजनन संस्कार कहते हैं। तदनन्तर बच्चे के दहिने कान वा नाभि के समीप मुख करके (ओम्—अग्निरायुष्मान्०) इत्यादि आठ मन्त्र सावधानी से

युष्मन्तस्ते क्रतैरायुष्मन्तस्तेन त्वाऽऽयुषाऽऽयुष्मन्तं करोमि ॥५॥ ओ३म्—पितर आयुष्मन्तस्ते स्वधाभिरायुष्मन्तस्तेन त्वायुषायुष्मन्तं करोमि ॥ ६॥ ओ३म्—यज्ञ आयुष्मान्त्सदक्षिणाभिरायुष्माँस्तेन त्वायुषायुष्मन्तं करोमि ॥ ७ ॥ ओ३म्—समुद्र आयुष्मान्त्स्रवन्तीभिरायुष्मांस्तेन त्वायुषायुष्मन्तं करोमि ॥ ८ ॥ इति जपित्वा ।

ओ३म् त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम् । यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नो अस्तु त्र्यायुषम् ॥

इति त्रिर्जपेत् । अथ तस्य दीर्घमायुः कामयमानः पुत्रमभिमृशन्वात्सप्रं जपति सचायम्—

ओ३म्—दिवस्परि प्रथमं जज्ञे अग्निरस्मद्द्वितीयं परि जातवेदाः ॥ तृतीयमप्सु नृमणा अजस्रमिन्धानएनं जरते स्वाधीः ॥१॥ ओ३म्—विद्मा ते अग्ने त्रेधा त्रयाणि विद्मा ते धाम विभृता पुरुत्रा ॥ विद्मा ते ना-

---

पढ़के (त्र्यायुषं०) मन्त्र को तीन वार पढ़े । तदनन्तर पुत्र की पूर्णआयु होना चाहता हुआ पिता बच्चे के सब शरीर का स्पर्श करता हुआ (ओम्-दिवस्परि०)

म परमं गुहा यद्विदमा तमुत्सं यत आज-
गन्थ ॥ २ ॥ ओ३म्—समुद्रे त्वा नृमणा अ-
प्स्वन्तर्नृचक्षाईधे दिवो अग्नऊधन्। तृतीये
त्वा रजसि तस्थिवाथंसमपामुपस्थे महिषा
अवर्द्धन् ॥३॥ ओ३म्—अक्रन्ददग्निः स्तनय-
न्निव द्यौः क्षामा रेरिहद्वीरुधः समञ्जन्।सद्यो
जज्ञानो विहीमिद्धो अख्यदारोदसी भानुना
भात्यन्तः ॥ ४॥ ओ३म्—श्रीणामुदारो धरुणो
रयीणां मनीषाणां प्रार्पणः सोमगोपाः ॥ वसुः
सूनुः सहसो अप्सु राजा विभात्यग्र उषसा-
मिधानः ॥५॥ ओ३म्—विश्वस्य केतुर्भुवनस्य
गर्भ आ रोदसी अपृणाज्जायमानः । वीडुं
चिदद्रिमभिनत्परायन् जना यदग्निमयजन्त
पञ्च ॥६॥ ओ३म्—उशिक्पावको अरतिः सु-
मेधामर्त्त्येष्वग्निरमृतो निधायि । इयर्त्ति धूम-
मरुषं भरिभ्रदुच्छुक्रेण शोचिषा द्यामिनक्षन् ७
ओ३म्दृशानो रुक्मउर्व्या व्यद्यौद्दुर्मर्षमायुः श्रिये
रुचानः।अग्निरमृतो अभवद्वयोभिर्यदेनं द्यौ-
रजनयत्सुरेताः॥८॥ओं यस्ते अद्य कृणवद्भद्र-

प्राचे पूषन्देव घृतवन्तमग्ने! । प्रतन्नय प्रतरं वस्यो अच्छाभिसुम्नं देवभक्तं यविष्ठं! ॥ ९ ॥

ओम्—आ तं भज सौश्रवसेष्वग्नउक्थउक्थ आभज शस्यमाने। प्रियः सूर्यै प्रियो अग्ना भवात्युज्जातेन भिनददुज्जनित्वैः ॥१०॥ ओं त्वामग्ने यजमाना अनुद्यून् विश्वावसु दधिरे वार्य्याणि। त्वया सह द्रविणमिच्छमाना व्रजं गोमन्तमुशिजो विवव्रुः ॥ ११ ॥

ततः कुमारं प्रतिदिशमेकैकं ब्राह्मणं मध्ये पञ्चममूर्ध्वमवेक्षमाणमवस्थाप्य तमुद्दिश्य—इममनुप्राणितेति पिता ब्रूयात्। ततस्तेषु प्राणेति पूर्वो व्यानेति दक्षिणोऽपानेति-अपर उदानेति उत्तर, उपरिष्टादवेक्षमाणः समानेति पञ्चमो ब्रूयात्। एषामभावे पिता स्वयमेव तत्रतत्रोपविश्य तथैव ब्रूयात्। अथ कुमारस्य जन्मभूमिमभिमन्त्रयेत्—

ओं वेद ते भूमि हृदयं दिवि चन्द्रमसि श्रि-

इत्यादि ग्यारह मन्त्रों का पाठ करे। तदनन्तर बच्चे के चारों ओर पूर्वादि चार दिशाओं में चार ब्राह्मणों को और पांचवें ब्राह्मण को बीच में बैठा के [बीच वाला ब्राह्मण ऊपर को देखता हो तब] पिता कहे (इममनुप्राणित) तदन्तर पूर्व-वाला ब्राह्मण कहे (प्राण) दक्षिणवाला कहे (व्यान) पश्चिमवाला कहे (अपान) उत्तरवाला कहे (उदान) और बीचवाला पांचवां ऊपर को देखता हुआ कहे (समान) यदि उस समय पांच ब्राह्मण न मिलें तो पिता प्रियवाक्य कहकर स्वयं उस२ दिशा में बैठ कर (प्राण) आदि शब्द बोललेवे। अब इस के पश्चात् जहां बच्चे का जन्म हुआ हो उस स्थान को देखता हुआ (ओं वेद ते भूमि०) मन्त्र को

तम्। वेदाहं तन्मां तद्विद्यात्पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतम् ॥

इति मन्त्रेण । अथाऽश्माभवेति कुमारमभिमृशति ।

ओम्—अश्मा भव परशुर्भव हिरण्यमस्रुतं भव। आत्मा वै पुत्रनामासि त्वं जीव शरदः शतम् ॥

ततः कुमारमातरमिडासीति मन्त्रेणाभिमन्त्रयेत् ।

इडासि मैत्रावरुणी वीरे! वीरमजीजनथाः। सा त्वं वीरवती भव याऽस्मान्वीरवतोऽकरत् ॥

ततः कुमारनाभिवर्द्धने कृते तस्या दक्षिणस्तनं प्रक्षाल्य कुमाराय प्रयच्छति–

ओम्—इमꣳ स्तनमूर्जस्वन्तं धयापां प्रपीनमग्ने शरीरस्य मध्ये। उत्सं जुषस्व मधुमन्तमर्वन्त्समुद्रियꣳ सदनमाविशस्व ॥

इति मन्त्रेण ततो वामस्तनं प्रक्षाल्य प्रयच्छति–

ओम्—इमꣳस्तनमित्यादि। ओम्—यस्ते स्तनः शशयो यो मयोभूर्या रत्नधा वसुविद्यः

पढ़े । इस के पश्चात् (अश्मा भव०) मन्त्र से बच्चे का स्पर्श करे । फिर बच्चे की माता की ओर देखता हुआ (इडासि०) इत्यादि मन्त्र पढ़े । तदनन्तर बच्चे का नाल कटजाने पर स्त्री के दहिने स्तन [दूध] को धोकर (इमꣳ स्तन०) मन्त्र से बच्चे के मुख में देवे। फिर बांये स्तन [दूध] का प्रक्षालन करके (इमꣳस्तन०) तथा (यस्ते स्तनः०) इन दो मन्त्रो से बच्चे के मुख में देवे । तदनन्तर सूतिका स्त्री

सुदत्रः। येन विश्वा पुष्यसि वार्याणि सरस्वति ! तमिह धातवेऽकः॥ इति मन्त्राभ्याम्।

ततः प्रसवित्रीशिरोदेशे भूमौ वारिपूर्णभाजनं निदध्यात्।

ओम्–आपो देवेषु जाग्रथ यथा देवेषु जाग्रथ एवमस्यां सूतिकायां सपुत्रिकायां जाग्रथ॥

इत्यनेन मन्त्रेण तच्च सूतिकोत्थापनपर्यन्तं तत्रैव धर्त्तव्यम्। ततः सूतिकागृहद्वारप्रवेशे पञ्चभूसंस्कारान् कृत्वाग्नेरुपसमाधानं स चाग्निरुत्थानदिनपर्यन्तं तत्रैव धर्त्तव्यः। तत्र चाग्नौ सन्ध्ययोः फलीकरणांस्तण्डुलांस्तन्मिश्रान् सर्षपान् दश दिनानि पिता अन्यो वा ब्राह्मणः शण्डामर्का इतिमन्त्राभ्यामाहुतिद्वयं नित्यं हस्तेन जुहोति।

ओम्–शण्डामर्का उपवीरः शौण्डिकेय उलूखलः। मलिम्लुचो द्रोणासश्च्यवनो नश्यतादितः स्वाहा॥ इदं शण्डामर्काभ्यामुपवीराय मलिम्लुचाय द्रोणेभ्यश्च्यवनाय न मम। ओम्–आलिखन्ननिमिषः किंवदन्त उपश्रुतिर्हर्यक्षः कुम्भीशत्रुः पात्रपाणिर्नृमणिर्हन्त्रीमु-

---

को खटिया के सिरहाने जल से भरके एक घड़ा (आपो देवेषु०) मन्त्र से धरे। यह घट सूतिका स्त्री के उठने पर्यन्त दश दिन तक वहीं धरा रक्खे। तदनन्तर सूतिकाघर के द्वार पर पञ्चभूसंस्कार करके किसी कुण्ड वा अंगीठी में अग्निस्थापन करे। वह अग्नि दश दिन तक वहां रहे बुझने न पावे। उस अग्नि में साय प्रातःकाल चावल के कण और सरसों को पिता वा अन्य ब्राह्मण (ओम्-

रतः कुशोपरि निदध्यात् । ततः परिस्तरणम्—बर्हिषश्चतुर्थभागमादाग्नेयादीशानान्तं नैर्ऋत्याद्वायव्यान्तम् । अग्नितः प्रणीतापर्यन्तम् । ततोऽग्नेरुत्तरतः पश्चिमदिशि पवित्रच्छेदनार्थं साग्रमनन्तर्गर्भं कुशपत्रद्वयं प्रोक्षणीपात्रमाज्यस्थाली संमार्जनकुशा उपयमनकुशाः प्रादेशमितपालाशसमिधस्तिस्रः स्रुव आज्यं तण्डुलपूर्णपात्रमेतानि पवित्रच्छेदनकुशानां पूर्वपूर्वदिशिक्रमेणासादनीयानि । ततः पवित्रच्छेदनार्थकुशैः प्रादेशमितपवित्रे छित्त्वा सपवित्रपाणिना प्रणीतोदकं त्रिः प्रोक्षणीपात्रे कृत्वा—अनामिकाङ्गुष्ठाभ्यामुत्तराग्रे पवित्रे गृहीत्वा त्रिरुदिङ्गनं प्रणीतोदकेन प्रोक्षणीप्रोक्षणं ततः प्रोक्षणीजलेन यथासादितद्रव्यसेचनं ततोऽग्निप्रणीतयोर्मध्ये प्रोक्षणीपात्रनिधानं तत आज्यस्थाल्यामाज्यनि-

---

लोकन करके अग्नि से उत्तर कुशों पर प्रणीतापात्र को प्रागग्र रक्खे । तदनन्तर चार मुट्ठी कुश लेकर अग्नि के सब ओर परिस्तरण करे—एक चौथाई कुश अग्निकोण से ईशानदिशा तक, द्वितीय भाग ब्रह्मा के आसन से अग्निपर्यन्त, तृतीयभाग नैर्ऋतकोण से वायुकोण पर्यन्त चौथा अग्नि से प्रणीता पर्यन्त बिछावे । तदनन्तर अग्निसे उत्तर में प्राक्संस्थ पात्रासादन करे । पवित्र छेदनार्थ तीन कुश तथा पवित्रकरणार्थ अग्रभाग सहित जिनके भीतर अन्य कुश न हो ऐसे दो कुश, प्रोक्षणीपात्र, आज्यस्थाली, सम्मार्जनकुश, उपयमनकुश, ढाक की तीन समिधा, स्रुव, आज्य, चावलोंसे भरा एक पूर्णपात्र, पवित्र छेदन कुशो से पूर्व पूर्व क्रम से उत्तर को अग्रभाग कर २ इन सब का स्थापन करे । पवित्रछेदनार्थ तीन कुशो से प्रादेशमात्र दो कुशों का छेदन करके पवित्र सहित दहिने हाथ से प्रणीता के जल को तीन बार प्रोक्षणीपात्र में डाल कर अनामिका और अङ्गुष्ठ से पकड़े हुये पवित्रों से उस प्रोक्षणीस्थ जलका उत्पवन करे और प्रणीता के जल से प्रोक्षणीस्थ जल का पवित्रो द्वारा तीन बार अभिसेचन कर के प्रोक्षणीपात्र के जल से आसादन किये आज्यस्थाली आदिका सेचन करके अग्नि और प्रणीतापात्र के बीच में प्रोक्षणीपात्र को रख देवे । तब आज्यस्था-

वापः, आज्यमधिश्रित्य ज्वलत्तृणं प्रदक्षिणं भ्रामयित्वा वह्नौ तत्प्रक्षेपः। ततः स्रुवप्रतपनं त्रिः। ततः संमार्जनकुशानामग्रैरन्तरतो मूलैर्बाह्यतः स्रुवं संमृज्य प्रणीतोदकेनाभ्युक्ष्य पुनस्त्रिःप्रतप्य दक्षिणतो निदध्यात्। तत आज्यमग्नितउद्वास्याग्नेरुत्तरतो निदध्यात्। तत आज्ये प्रोक्षणीवदुत्पवनम्। आज्यमवेक्ष्य सत्यपद्रव्ये तन्निरसनं ततः पूर्ववत्प्रोक्षण्युत्पवनं, ततउत्थायोपयमनकुशानादाय प्रजापतिं मनसा ध्यात्वा तूष्णीमग्नौ घृताक्ताः समिधः क्षिपेत्। अथोपविश्य सपवित्रप्रोक्षणीजलेनाग्निं प्रदक्षिणक्रमेण पर्युक्ष्य प्रणीतापात्रे पवित्रे धृत्वा ब्रह्मणान्वारब्धः पातितदक्षिणजानुः समिद्धतमेऽग्नौ जुहुयात्। तत्राहुतिचतुष्टये प्र-

---

ली में घृतपात्र से घृत गिरावे घृत को अग्नि पर धरके सूखे कुश जलाकर घी के ऊपर प्रदक्षिण भ्रमण कराके अग्नि में जलते कुश फेंक कर स्रुवा को तीन बार अग्नि में तपा के संमार्जन कुशों के अग्रभाग से भीतर को ओर कुशों के मूलभाग से बाहर की ओर स्रुवा को झाड़ पोंछ शुद्धकर तथा प्रणीता के जल से सेचन करके और फिर तीन बार तपा के अग्नि से दक्षिण की ओर स्रुवा को धरदेवे। तत्पश्चात् तपते हुए घी को अग्निसे उतार के उत्तरमें धरे। तब तीन बार प्रोक्षणी के तुल्य पवित्रोंसे घी का उत्पवन करके देखे यदि घृतमें कुछ निकृष्ट वस्तु हो तो निकाल कर फेंक देवे और फिर तीन बार प्रोक्षणीपात्र का उत्पवन करे। तदनन्तर उठ कर उपयमनकुशों को वाम हाथ में लेके प्रजापति का मन से ध्यान करके घृत में डुबोई तीन समिधाओं को तूष्णीं बिना मन्त्र पढे एक २ कर अग्नि में चढ़ावे। फिर बैठ कर पवित्र सहित प्रोक्षणी के जल को प्रदक्षिणक्रम से ईशानकोण से लेकर उत्तर दिशा तक अग्नि के सब ओर सेचन करे अर्थात् प्रोक्षणीपात्र का सब जल पर्युक्षण में गिरा देवे। प्रणीतापात्र में दोनों पवित्र रखके प्रोक्षणीपात्र का विसर्जन करे। तदनन्तर दहिने घोंटू को भूमि में टेक कर ब्रह्मासे अन्वारब्ध हुआ यजमान प्रज्वलित अग्नि में स्रुवा से आज्याहुतियों का होम करे। वहां २ दस २ आहुति देने पश्चात् स्रुवा में

त्याहुत्यनन्तरं हुतशेषस्य घृतस्य प्रोक्षणीपात्रे प्रक्षेपः ॥

ओ३म्—प्रजापतये स्वाहा। इदं प्रजापतये न मम।

इति मनसा

ओ३म्—इन्द्राय स्वाहा। इदमिन्द्राय०। इत्याघारौ

ओ३म्—अग्नये स्वाहा ॥ इदमग्नये न मम।

ओ३म्—सोमाय स्वाहा॥ इदं सोमाय न मम।

इत्याज्यभागौ।

ओम्—भूः स्वाहा॥ इदमग्नये न मम। ओं—भुवः स्वाहा ॥ इदं वायवे न मम। ओं स्वः स्वाहा॥ इदं सूर्याय न मम।

एता महाव्याहृतयः ॥

ओं— त्वन्नो अग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेडोऽअवयासिसीष्ठाः। यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषांसि प्रमुमुग्ध्यस्मत्स्वाहा ॥१॥ इदमग्नीवरुणाभ्यां न मम। ओम्—स त्वन्नो अग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठो अस्या उषसो व्युष्टौ। अवयक्ष्व

जो घृतबिन्दु बचें उन को प्रोक्षणीपात्र में डालता जावे। प्रजापति का ध्यान कर पूर्वाघार की तूष्णीं आहुति देवे। त्याग सब यजमान स्वयं बोलता जाय। आघार की दो आज्य भाग की दो और महाव्याहृतियों की तीन सर्वप्राय-

नो वरुणथं रराणो वीहि मृडीकथं सुहवो न-
एधि स्वाहा ॥२॥ इदमग्नीवरुणाभ्यां नमम।
ओं–अयाश्चाग्नेऽस्यनभिशस्तिपाश्च सत्य-
मित्त्वमया असि। अया नो यज्ञं वहास्यया
नो धेहि भेषजथं स्वाहा ॥ ३ ॥ इदमग्नये
न मम। ओं–ये ते शतं वरुण ये सहस्रं य-
ज्ञियाः पाशा वितता महान्तः। तेभिर्नोऽअद्य
सवितोत विष्णुर्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्काः
स्वाहा ॥४॥ इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे वि-
श्वेभ्यो देवेभ्यो मरुद्भ्यः स्वर्केभ्यश्च नमम।
ओम्–उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि-
मध्यमथं श्रथाय। अथावयमादित्य ! व्रते
तवानागसो अदितये स्याम स्वाहा ॥५॥ इदं
वरुणाय न मम। एताः सर्वप्रायश्चित्ताहु-
तयः। ओम्–प्रजापतये स्वाहा। इदं प्रजा-
पतये न मम। इति मनसा प्राजापत्यम्।
ओम्–अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा। इदम-
ग्नये स्विष्टकृते न मम॥

इति स्विष्टकृद्धोमः। ततः संस्रवप्राशनमाचमनं च कृत्वा ब्रह्मणे दक्षिणां दद्यात्। ओमद्यैतस्मिन्नामकर्महोमकर्मणि कृताकृतावेक्षणरूपब्रह्मकर्मप्रतिष्ठार्थमिदं पूर्णपात्रं प्रजापतिदैवतममुकगोत्रायामुकशर्मणे ब्रह्मणे ब्राह्मणाय दक्षिणां तुभ्यमहं संप्रददे—इति दक्षिणां दद्यात्। ओं स्वस्तीति प्रतिवचनम्। ततः—

ओं सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु।

इति पवित्राभ्यां प्रणीताजलमानीय तेन शिरः संमृज्य—

ओं दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः॥

इत्यैशान्यां प्रणीतान्युब्जीकरणम्। ततः स्तरणक्रमेण बर्हिरुत्थाप्य घृतेनाभिघार्य हस्तेनैव जुहुयात्।

ओं देवा गातुविदो गातुं वित्त्वा गातुमित। मनसस्पतइमं देवयज्ञं स्वाहा वातेधाः स्वाहा॥ इदं वाताय न मम। इति बर्हिर्होमः।

श्वित्त की पाच तथा प्राजापत्य और स्विष्टकृत् दो सब चौदह आहुति त्यागों सहित देके संस्रव प्राशन कर हाथ धो आचमन कर के ब्रह्मा को दक्षिणा देवे उस में (ओमद्यैतस्मिन्॰) इत्यादि सकल्प करे। और ब्रह्मा स्वस्ति कह कर दक्षिणा लेवे। तदनन्तर पवित्रो द्वारा प्रणीता का जल लेकर (ओ सुमित्रि॰) मन्त्र पढ के अपने शिर पर जलसेचन करके (ओ दुर्मित्रिया॰) मन्त्र से प्रणीता के शेष जल को ईशान दिशा में लौट देवे और पवित्रों को बिछाये हुए कुशों में मिला देवे तब जिस क्रम से कुश बिछाये थे उसी क्रम से पवित्रो सहित उठा कर कुशो में घी लगाके हाथ से ही कुशों का होम (ओ देवागातुवि॰) मन्त्र

प्राङ्मुखं बालमादाय दक्षिणकर्णे—अमुकशर्मासीति त्रिः श्रावयति । अथ आयुर्वेदान्मन्त्रः ॥

ओम्—अङ्गादङ्गात्संभवसि हृदयादधिजायसे। आत्मा वै पुत्र नामासि स जीव शरदः शतम्॥

नाम द्व्यक्षरं चतुरक्षरं सुखोद्यं शर्मान्तं ब्राह्मणस्य वर्मान्तं क्षत्रियस्य गुप्तान्तं वैश्यस्य दासान्तं शूद्रस्य ॥ इति नामकर्म॥

अथ निष्क्रमणम् ।

तत्र चतुर्थे मासि शुभे दिने स्नातमलङ्कृतं शिशुं गृहाद्बहिरानीय पिताऽन्यो वा ब्राह्मणः सूर्यमुदीक्षयति ।

पढ़ के त्याग के साथ कर देवे। तब बच्चे का पूर्व को मुख कर गोद में लेके उस के कान में मुख लगाकर तीन बार कहे (अमुकशर्मासि) और (ओम्—अङ्गाद्ङ्गात्सं०) मन्त्र को भी बच्चे के कान में पढ़े। नाम दो वा चार अक्षर का बोलने में सरल ब्राह्मण का शर्मान्त, क्षत्रिय का वर्मान्त, वैश्य का गुप्तान्त, और शूद्र का दासान्त नाम रक्खे । कन्याओं के तीन वा पांच अक्षर के नाम धरे यथा—

*वेदनिधि, विद्यानिधि, सत्यव्रत, धर्मानन्द, सुखदेव, सहदेव, दीनदयाल, श्रीकृष्ण, हरिकृष्ण, हरेराम, श्रीधर, श्रीवल्लभ, हरिवल्लभ, माधव, रामचन्द्र, राजाराम, कृपाराम, जयराम, लक्ष्मीचन्द्र, लक्ष्मण, शिवशंकर, महादेव, जयदेव गोविंदराम, मधुसूदन, जयकृष्ण, बलभद्र, बलराम, शत्रुघ्न, नारायण, जयानन्द, क्षेमराम, केवलराम, इत्यादि के साथ शर्मा, वर्मा, गुप्त, दास, लगालेना ॥

कन्याओं के नाम—ज्ञानदेवी, दमयन्ती, दयावती, बुद्धिमती, सावित्री, मंगलदेवी, यशोदा, हेमवती, रुक्मिणी, लक्ष्मी, सत्यभामा, ईश्वरी, विष्णुदेवी जयदेवी, श्रीदेवी, पूर्णदेवी, राधादेवी, भाग्यवती, कलावती, लीलावती, पद्मावती, रमादेवी, विद्याधरी, सरस्वती, सुखदा, मैत्रेयी, सीतादेवी, इत्यादि ॥

अथ निष्क्रमण—चौथे महिने में शुभ दिन बालक को स्नान करा और शुद्ध वस्त्र आभूषण पहिना के पिता वा अन्य ब्राह्मण घरसे बाहर लाके (तच्चक्षुर्देव०)

ओम्–तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्।
पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृ-
णुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदी-
नाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्॥

इति मन्त्रेण । तत्र फलपुष्पान्वितपयसा भास्करायार्घो देयः ॥ इति निष्क्रमणम् ॥ ६ ॥

अथान्नप्राशनम् ॥

तत्र षष्ठे मासि शुभे दिने स्नातः शुचिराचान्तः शुक्लद्विवासाः पिता सूतिकागृहएव कुशकण्डिकां कुर्यात् । तत्र कुशैर्हस्तपरिमितचतुरस्रभूमिं परिसमुह्य तानैशान्यां निःक्षिप्य गोमयोदकेनोपलिप्य स्फयेन स्रुवेण वा प्रादेशमात्रमुत्तरोत्तरक्रमेण प्रागग्रं त्रिरुल्लिख्य उल्लेखनक्रमेणानामिकाङ्गुष्ठाभ्यां मृदं समुद्धृत्य वारिणा तं देशमभ्युक्ष्य-कांस्यपात्रस्थं वह्निं प्रत्यङ्मुखमुपसमाधाय–

मन्त्र पढ के सूर्य का दर्शन करावे तथा फल पुष्प सहित दूध का अर्घ सूर्य को देवे ॥ इति निष्क्रमणम् ॥

अथ अन्नप्राशन–छठे महिने में शुभदिन पूर्वाह्न में बालक का पिता स्नान आचमन कर दो वस्त्र पहिन के सूतिकाघर में विधिपूर्वक होम करे। प्रथम वेदि में पञ्चभूसंस्कार करे—तीन कुशों से वेदिभूमि को झाड़ कर कुशों को ईशानकोण में फेंककर गोबर और जल से लीप कर स्रुवा के मूल वा स्फ्य से उत्तर २ वेदिमें प्रागायत तीन रेखा करे । अनामिका और अंगुष्ठ से रेखाओं में से मट्टी को उठाकर फेंक के वेदिमें जलसेचन करे । कांसेके वा मट्टी के पात्र में अग्नि लाकर पश्चिमाभिमुख स्थापन करे । तत्पश्चात्–पुष्प चन्दन ताम्बूल

ओम्—अद्यकर्त्तव्यान्नप्राशनहोमकर्मणि कृताकृतावेक्षणरूपब्रह्मकर्म कर्त्तुममुकगोत्रममुकशर्माणं ब्राह्मणमेभिः पुष्पचन्दनताम्बूलवासोभिर्ब्रह्मत्वेन त्वामहं वृणे ।

इति ब्रह्माणं वृणुयात् ।

ओम्—वृतोऽस्मीति प्रतिवचनम् । ओम्—यथाविहितं कर्म कुर्वति यजमानेनोक्ते—ओम्—करवाणीति तेनोक्ते अग्नेर्दक्षिणतः शुद्धमासनं निधाय तदुपरि प्रागग्रान् कुशानास्तीर्य अग्निप्रदक्षिणं कारयित्वा ब्रह्माणमुदङ्मुखं तत्रोपवेश्यास्मिन्नन्नप्राशनहोमकर्मणि त्वम्मे ब्रह्माभवेत्यभिधाय—ओम्—भवानीति तेनोक्ते प्रणीतापात्रं पुरतः कृत्वा वारिणा परिपूर्य कुशैराच्छाद्य ब्रह्मणो मुखमवलोक्याग्नेरुत्तरतो निदध्यात् । ततः परिस्तरणं बर्हिषश्चतुर्थभागमादायाग्नेयादीशानान्तं ब्रह्मणोऽग्निपर्यन्तं नैर्ऋत्याद्वायव्यान्तमग्नितः

ओर वस्त्रों को लेकर (ओमद्य०) इत्यादि वाक्य पढ़ के यजमान ब्रह्मा का वरण करे और पुष्पादि ब्रह्मा के हाथ में देवे। ब्रह्मा पुष्पादि को लेकर (वृतोऽस्मि) कहे । तब (यथावि०) यजमान कहे और ब्रह्मा (करवाणि) कहे । तब अग्नि से दक्षिण में शुद्ध आसन चौकी आदि बिछाकर उस पर पूर्व को जिनका अग्रभाग हो ऐसे कुश बिछाकर ब्रह्मा को अग्नि की प्रदक्षिणा कराके (अस्मिन् कर्मणि त्वं मे ब्रह्मा भव) इस कर्म में तुम मेरे ब्रह्मा हो ऐसा कहकर ब्रह्मा के (भवानि) कहनेपर उस आसन पर ब्रह्मा को उत्तराभिमुख बैठाकर प्रणीतापात्र को सामने रख के जल से भर के कुशों से आच्छादन कर ब्रह्मा का मुख अवलोकन करके अग्नि से उत्तर कुशों पर प्रणीतापात्र को प्रागग्र रक्खे । तदनन्तर चार मुट्ठी कुश लेकर अग्नि के सब ओर परिस्तरण करे—एक चौथाई कुश अग्निकोण से ईशानदिशा तक, द्वितीय भाग ब्रह्मा के आसन से अग्निपर्यन्त,

प्रणीतापर्यन्तं ततोऽग्नेरुत्तरतः पश्चिमदिशि पवित्रच्छेदनार्थं कुशत्रयम्, पवित्रकरणार्थं साग्रमनन्तर्गर्भितकुशपत्रद्वयं प्रोक्षणीपात्रं आज्यस्थाली चरुस्थाली सम्मार्जनकुशा उपयमनकुशाः प्रादेशमितपलाशसमिधस्तिस्रः स्रुव आज्यं पूर्णपात्रं चर्वर्थास्तण्डुला एतानि पवित्रच्छेदनकुशानां पूर्वपूर्वदिशिक्रमेणासादनीयानि। ततः पवित्रच्छेदनकुशैर्यजमानप्रादेशमितपवित्रच्छेदनं सपवित्रकरेण प्रणीतोदकं त्रिः प्रोक्षणीपात्रे निधाय द्वाभ्यामनामिकाङ्गुष्ठाभ्यामुत्तराग्रे पवित्रे गृहीत्वा त्रिरुत्पवनं ततः प्रोक्षणीपात्रं सव्यहस्तेन गृहीत्वा दक्षिणानामिकाङ्गुष्ठाभ्यां पवित्रे गृहीत्वा त्रिरुदिङ्गनं ततः प्रणीतोदकेन प्रोक्षणीपात्रमभ्युक्ष्य प्रोक्षणीजलेनासादितवस्तुसेचनं कृत्वाऽग्निप्रणीतयोर्मध्ये प्रोक्षणीपात्रं निदध्यात्। ततआज्यस्थाल्यामाज्यं निरुप्य प्रणीतोदकेन तण्डुलान्प्रक्षा-

---

तृतीयभाग नैर्ऋतकोण से वायुकोण पर्यन्त चौथा अग्नि से प्रणीता पर्यन्त बिछावे। तदनन्तर अग्निसे उत्तर में प्राक्संस्थ पात्रासादन करे। पवित्र छेदनार्थ तीनकुश तथा पवित्रकरणार्थ अग्रभाग सहित जिनके भीतर अन्य कुश न हो ऐसे दो कुश, प्रोक्षणीपात्र, आज्यस्थाली, संमार्जनकुश, उपयमनकुश, ढाक की तीन समिधा, स्रुव, आज्य, चावलोंसे भरा एक पूर्णपात्र, पवित्र छेदन कुशो से पूर्व पूर्व क्रम से उत्तर को अग्रभाग कर २ इन सब का स्थापन करे। पवित्रछेदनार्थ तीन कुशो से प्रादेशमात्र दो कुशो का छेदन करके पवित्र सहित दहिने हाथ से प्रणीता के जल को तीन बार प्रोक्षणीपात्र में डाल कर अनामिका और अङ्गुष्ठ से पकड़े हुये पवित्रो से उस प्रोक्षणीस्थ जलका उत्पवन करे और प्रणीता के जल से प्रोक्षणीस्थ जल का पवित्रो द्वारा तीन बार अभिसेचन करके प्रोक्षणीपात्र के जल से आसादन किये आज्यस्थाली आदिका सेचन करके अग्नि और प्रणीतापात्र के बीच में प्रोक्षणीपात्र को रख देवे। तब आज्यस्थाली में घृतपात्र से घृत गिरावे घृत को अग्नि पर धरके सूखे कुश जलाकर घी

थ चरुपात्रे प्रणीतोदकं दत्वा तत्र तण्डुलान् प्रक्षिप्य स्वयं चरुं गृहीत्वा ब्रह्मणाचाज्यं ग्राहयित्वावन्हावुत्तरतश्चरुं दक्षिणत आज्यं निदध्यात्। ततः सिद्धे चरौ तृणादि प्रज्वाल्य उभयोरुपरि प्रदक्षिणं भ्रामयित्वा वह्नौ तत्प्रक्षेपः। ततस्त्रिः स्रुवप्रतपनं सम्मार्जनकुशानामग्रैरन्तरतो मूलैर्बाह्यतः स्रुवं संमृज्य प्रणीतोदकेनाभ्युक्ष्य पुनस्त्रिः प्रतप्य दक्षिणतो निदध्यात्। तत आज्यमग्नितश्चरोः पूर्वेणानीयाग्रे धृत्वा आज्यपश्चिमेन चरुमानीयाज्यस्योत्तरतो निदध्यात्। तत आज्यस्य प्रोक्षणीवत्त्रिरुत्पवनम्। अवेक्ष्य सत्यपद्रव्ये तन्निरसनं ततः प्रोक्षण्युत्पवनम्। तत उत्थाय उपयमनकुशान्वामहस्ते कृत्वा प्रजापतिं मनसा ध्यात्वा तूष्णीमग्नौ घृताक्ताः समिधस्तिस्रः प्रक्षिपेत्। तत उपविश्य सपवि-

---

के ऊपर प्रदक्षिण भ्रमण कराके अग्नि में जलते कुश फेंक कर स्रुवा को तीन बार अग्नि में तपा के संमार्जन कुशों के अग्रभाग से भीतर की ओर कुशों के मूलभाग से बाहर की ओर स्रुवा को झाड पोछ शुद्धकर तथा प्रणीता के जल से सेचन करके और फिर तीन बार तवा के अग्नि से दक्षिण की ओर स्रुवा को धरदेवे। तत्पश्चात् तपते हुए घी को अग्निसे उतार के उत्तरमें धरे। तब तीन बार प्रोक्षणी के तुल्य पवित्रोसे घी का उत्पवन करके देखे यदि घृतमें कुछ निकृष्ट वस्तु हो तो निकाल कर फेंक देवे और फिर तीन बार प्रोक्षणीपात्र का उत्पवन करे। तदनन्तर उठ कर उपयमनकुशों को वाम हाथ में लेके प्रजापति का मन से ध्यान करके घृत में डुबोई तीन समिधाओं को तूष्णीं बिना मन्त्र पढे एक २ कर अग्नि में चढावे। फिर बैठ कर पवित्र सहित प्रोक्षणी के जल को प्रदक्षिणक्रम से ईशानकोण से लेकर उत्तर दिशा तक अग्नि के सब ओर सेचन करे अर्थात् प्रोक्षणीपात्र का सब जल पर्युक्षण में गिरा देवे। प्रणीतापात्र में दोनो पवित्र रखके प्रोक्षणीपात्र का विसर्जन करे। तदनन्तर दहिने घोंट को

अप्रोक्षणयुदकेन प्रदक्षिणक्रमेणाग्निं पर्युक्ष्य प्रणीतापात्रे पवित्रे निधाय ब्रह्मणान्वारब्धः पातितदक्षिणजानुः समिद्धतमेऽग्नौ जुहुयात् । तत्र प्रथमाहुतिचतुष्टये तत्तदाहुत्यनन्तरं स्रुवावस्थितहुतशेषस्य प्रोक्षणीपात्रे प्रक्षेपः ।

ओ३म्–प्रजापतये स्वाहा। इदं प्रजापतये न मम।

इति मनसा

ओ३म्–इन्द्राय स्वाहा । इदमिन्द्राय० । इत्याघारौ

ओ३म्–अग्नये स्वाहा ॥ इदमग्नये न मम ।

ओ३म्–सोमाय स्वाहा ॥ इदं सोमाय न मम ।

इत्याज्यभागौ ततोऽनन्वारब्धेन साधारणासाधारणाहुतिद्वयं कार्यम् । तत्र प्रथमाहुतिमन्त्रः–

ओम्–देवीं वाचमजनयन्त देवास्तां विश्वरूपाः पशवो वदन्ति । सा नो मन्द्रेषमूर्जं दुहाना धेनुर्वागस्मानुपसुष्टुतैतु स्वाहा ॥ इदं वाचे न मम । द्वितीयाहुतिस्तु ॥

ओम्–देवीं वाचमित्यादिमन्त्रं पठित्वा ओम्–वाजो नो अद्य प्रसुवाति दानं वाजो

देवीं ऋतुभिः कल्पयाति ॥ वाजो हि मा सर्ववीरं जजान विश्वा आशा वाजपतिर्जयेयथंस्वाहा ॥ इदं वाचे वाजाय नमम ।

इति मन्त्राभ्याम् ॥ ततः स्थालीपाकेनाहुतिचतुष्टयम् ।

ओम्-प्राणेनान्नमशीय स्वाहा ॥ इदं प्राणाय नमम । ओम्-अपानेन गन्धमशीय स्वाहा ॥ इदमपानाय नमम । ओम्-चक्षुषा रूपाण्यशीय स्वाहा ॥ इदं चक्षुषे नमम । ओम्-श्रोत्रेण यशोऽशीय स्वाहा ॥ इदं श्रोत्राय नमम ।

ततो ब्रह्मणान्वारब्धकर्तृको होमः-तत्र तत्तदाहुत्यनन्तरं स्रुवावस्थितहुतशेषद्रव्यस्य प्रोक्षणीपात्रे प्रक्षेपः । तत्रैवाज्यस्थालीपाकाभ्यां स्विष्टकृतम् ।

ओम्-अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा । इदमग्नये स्विष्टकृते नमम । तत आज्येन ।

ओम्-भूः स्वाहा ॥ इदमग्नये नमम ।

आघार की दो और आज्यभाग की दो आहुति देकर (देवीं वाचम्) इत्यादि आघाराज्यभाग दो आहुति ब्रह्मा के अन्वारम्भ किये बिना देकर स्थालीपाक में (प्राणेनान्न) इत्यादि मन्त्रों द्वारा चार आहुति देवें। तदनन्तर ब्रह्मा के अन्वारम्भ करने पर होम करे तथा स्रुवा का शेष घी प्रोक्षणीपात्र में छोड़ता

ओं-भुवः स्वाहा ॥ इदं वायवे नमम । ओं स्वः स्वाहा ॥ इदं सूर्याय नमम ।

एता महाव्याहृतयः ॥

ओं- त्वन्नो अग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेडोऽअवयासिसीष्ठाः । यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषाꣳसि प्रमुमुग्ध्यस्मत्स्वाहा ॥ १ ॥ इदमग्नीवरुणाभ्यां न मम । ओम्-स त्वन्नो अग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठो अस्या उषसो व्युष्टौ । अवयक्ष्व नो वरुणꣳ रराणो वीहि मृडीकꣳ सुहवो नएधि स्वाहा ॥ इदमग्नीवरुणाभ्यां नमम । ओं-अयाश्चाग्नेऽस्यनभिशस्तिपाश्च सत्यमित्त्वमया असि । अया नो यज्ञं वहास्यया नो धेहि भेषजꣳ स्वाहा ॥ ३ ॥ इदमग्नये न मम । ओं-ये ते शतं वरुण ये सहस्रं यज्ञियाः पाशा वितता महान्तः । तेभिर्नोऽअद्य सवितोत विष्णुर्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्काः स्वाहा ॥४॥ इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे वि-

* जावे। और घृत और चरु (भात) दोनों से एक स्विष्टकृत् आहुति देकर केवल घी से महाव्याहृतियों की तीन आहुति सर्वप्रायश्चित्त की पांच आहुति तथा

प्रवेभ्यो देवेभ्यो मरुद्भ्यः स्वर्केभ्यश्च नमम। ओम्–उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं विमध्यमश्रं श्रथाय। अथावयमादित्य ! व्रते तवानागसो अदितये स्याम स्वाहा ॥५॥ इदं वरुणाय न मम। इति सर्वप्रायश्चित्तम्। ओम्–प्रजापतये स्वाहा। इदं प्रजापतये न मम। इति मनसा प्राजापत्यम्।

अथ संस्रवप्राशनम्। तत आचम्य–ओमद्यकृतैतदन्नप्राशनहोमकर्मणि कृताकृतावेक्षणरूपब्रह्मकर्मप्रतिष्ठार्थमिदं पूर्णपात्रं प्रजापतिदैवतममुकगोत्रायामुकशर्मणे ब्रह्मणे ब्राह्मणाय दक्षिणां तुभ्यमहं संप्रददे–इति दक्षिणां दद्यात्। ओं स्वस्तीति प्रतिवचनम्। ततः प्रणीताविमोकः–

ओं सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु।

इति पठित्वा पवित्राभ्यां प्रणीताजलमानीय तेन शिरः संमृज्य–

ओं दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः॥

एक प्राजापत्य आहुति त्यागो सहित इन आहुतियों को देके संस्रवप्राशन कर, हाथ धो आचमन कर के ब्रह्मा को दक्षिणा देवे उस में (ओमद्यैतस्मिन्०) इत्यादि संकल्प करे। और ब्रह्मा स्वस्ति कह कर दक्षिणा लेवे। तदनन्तर पवित्रों द्वारा प्रणीता का जल लेकर (ओं सुमित्रि०) मन्त्र पढ के अपने शिर पर जल सेचन करके (ओ दुर्मित्रिया०) मन्त्र से प्रणीता के शेष जल को ईशानदिशा में,

कुशकण्डिकामारभेत । तत्र क्रमः—कुशैर्हस्तमितां भूमिं परिसमुह्य तानैशान्यां परित्यज्य गोमयोदकेनोपलिप्य स्रुवमूलेन प्रादेशमात्रन्त्रिरुल्लिख्य उल्लेखनक्रमेणानामिकाङ्गुष्ठाभ्यामृदमुद्धृत्य वारिणा तं देशमभ्युक्ष्य कांस्यपात्रेणाग्निमानीय प्रत्यङ्मुखमग्नेरुपसमाधानं कुर्यात् । ततोऽग्नेः पश्चिमतो यजमानाद्दक्षिणदिशि स्नापितमहतवासः परिधाप्य कुमारमङ्के निधाय माता उपविशति । ततः पुष्पचन्दनताम्बूलवासांस्यादाय—

ओम्—अद्यैतस्मिन् कर्तव्यचूडाकर्महोमकर्मणि कृताकृतावेक्षणरूपब्रह्मकर्म कर्तुममुकगोत्रममुकशर्माणं ब्राह्मणमेभिः पुष्पचन्दनताम्बूलवासोभिर्ब्रह्मत्वेन त्वामहं वृणे ।

इति ब्रह्माणं वृणुयात् ।

ओम्—वृतोऽस्मीति प्रतिवचनम् । ओम् यथाविहितं कर्म कुर्विति यजमानेनोक्ते । ओम्—करवाणि ।

शुद्ध भूमि में मण्डप बनाके विधिपूर्वक होम करे । प्रथम वेदि में पंचभूसंस्कार करे—तीन कुशों से वेदिभूमि को झाड़कर कुशों को ईशानकोण में फेंककर गोबर और जल से लीप कर स्रुवा के मूल वा स्फ्य से उत्तर २ वेदि में प्रागायत तीन रेखा करे। अनामिका और अंगुष्ठ से रेखाओं में से मट्टी को उठा कर फेंक के वेदि में जलसेचन करे । कांसे के वा मट्टी के पात्र में अग्नि लाकर पश्चिमाऽभिमुख स्थापन करे । तत्पश्चात्-पुष्प चन्दन ताम्बूल और वस्त्रों को लेकर (ओमद्य०) इत्यादि वाक्य पढ के यजमान ब्रह्मा का वरण करे और पुष्पादि ब्रह्मा के हाथ में देवे। ब्रह्मा पुष्पादि को लेकर (ओवृतोऽस्मि) कहे । तब (य

इतिप्रतिवचनम् । ततो यजमानोऽग्नेर्दक्षिणतः शुद्धमासनं दत्वातदुपरि प्रागग्रान्कुशानास्तीर्याग्निं प्रदक्षिणं कारयित्वाऽस्मिन्कर्मणि त्वं मेब्रह्मा भवेत्यभिधाय । ओम्—भवानीति तेनोक्ते ब्रह्माणमुदङ्मुखं तत्रोपवेश्य—प्रणीतापात्रं पुरतः कृत्वा वारिणा परिपूर्य कुशैराच्छाद्य ब्रह्मणो मुखमवलोक्याग्नेरुत्तरतः कुशोपरि निदध्यात् । ततः परिस्तरणं बर्हिपश्चतुर्थभागमादाय—आग्नेयादीशानान्तं ब्रह्मणोऽग्निपर्यन्तं नैर्ऋत्याद्वायव्यान्तमग्नितः प्रणीतापर्यन्तम् । ततोऽग्नेरुत्तरतः पश्चिमदिशि पवित्रच्छेदनार्थं कुशत्रयम् । पवित्रकरणार्थं साग्रमनन्तर्गर्भितकुशपत्रद्वयम् । प्रोक्षणीपात्रं, आज्यस्थाली संमार्जनकुशाः, समिधस्तिस्रः, स्रुव, आज्यं, तण्डुलपूर्णपात्रं, पवित्रच्छेदनकुशानां पूर्वपूर्वदिशिक्रमेणासादनीयम् । अमी-

---

चावि०) यजमान कहे और ब्रह्मा (करवाणि०) कहे । तब अग्नि से दक्षिण में शुद्ध आसन चोकी आदि बिछाकर उस पर पूर्व को जिनका अग्रभाग हो ऐसे कुश बिछाकर ब्रह्मा को अग्नि की प्रदक्षिणा कराके (अस्मिन् कर्मणि त्वं मे ब्रह्मा भव) इस कर्म में तुम मेरे ब्रह्मा हो ऐसा कहकर ब्रह्मा के (भवानि) कहनेपर उस आसन पर ब्रह्मा को उत्तराभिमुख बैठाकर प्रणीतापात्र को सामने रख के जल से भर के कुशों से आच्छादन कर ब्रह्मा का मुख अवलोकन करके अग्नि से उत्तर में कुशो पर प्रणीतापात्र को स्थापन रक्खे । तदनन्तर चार मुट्ठी कुश लेकर अग्नि के सब ओर परिस्तरण करे—एक चौथाई कुश अग्निकोण से ईशानदिशा तक, द्वितीय भाग ब्रह्मा के आसन से अग्निपर्यन्त, तृतीयभाग नैर्ऋतकोण से वायुकोण पर्यन्त चौथा अग्नि से प्रणीता पर्यन्त बिछावे । तदनन्तर अग्नि से उत्तर में पश्चिमदिशा पात्रासादन करे । पवित्र छेदनार्थं तीन कुश तथा पवित्रकरणार्थं अग्रभाग सहित जिन के भीतर अन्य कुश न हो ऐसे दो कुश, प्रोक्षणीपात्र, आज्यस्थाली, संमार्जनकुश, उपयमनकुश, ढाक की तीन समिधा, स्रुव, आज्य, चावलोंसे भरा एक पूर्णपात्र, पवित्र छेदन कुशो से पूर्व पूर्व क्रम से उत्तर को

पामुत्तरोत्तरतः साधारणवस्तून्युपकल्पनीयानि तत्र शीतोदकमुष्णोदकं घृतदधिनवनीतान्यतमस्य पिण्डः, त्रिःश्वेतशल्लकीकण्टकं साग्रसप्तविंशतिकुशपत्राणि, लोहक्षुरः, नापितः, वृषभगोमयपिण्डः। ततः पवित्रच्छेदनकुशैः पवित्रे छित्त्वा सपवित्रकरेण प्रणीतोदकं त्रिः प्रोक्षणीपात्रे निषिच्य द्वाभ्यामनामिकाङ्गुष्ठाभ्यामुत्तराग्रे पवित्रे गृहीत्वा त्रिरुत्पवनं ततः प्रोक्षणीपात्रं वामहस्ते कृत्वाऽनामिकाङ्गुष्ठगृहीतपवित्राभ्यां प्रोक्षणीजलं त्रिरुत्क्षिप्य प्रणीतोदकेन प्रोक्षणीपात्रमभ्युक्ष्य प्रोक्षणीजलेनासादितवस्तून्यभिषिच्याग्निप्रणीतयोर्मध्ये प्रोक्षणीपात्रं निदध्यात्। आज्यस्थाल्यामाज्यं कृत्वाऽधिश्रित्य ज्वलत्तृणादिकमादायाज्यस्योपरि प्रदक्षिणं भ्रामयित्वा वह्नौ तत्क्षिपेत्। ततस्त्रिः स्रुवप्रतपनं संमार्जनकुशानामग्रैरन्तरतो मूलैर्बाह्यतः स्रुवं संमृज्य प्रणीतो-

---

अग्रभाग कर २ इन सब का स्थापन करे। उक्त वस्तुओं से उत्तर २ की ओर साधारण वस्तु रक्खे—शीतजल, गर्मजल, घी दही वा मक्खन इन में से कोई एक, तीन जगह में श्वेत सेही का एक कांटा, अग्रभाग सहित सत्ताईस कुश, लोह का छुरा, नाई, बैल का गोबर इन सब को स्थापित करके पवित्रछेदनार्थ तीन कुशों से प्रादेशमात्र दो कुशों का छेदन करके पवित्र सहित दहिने हाथ से प्रणीता के जल को तीन बार प्रोक्षणीपात्र में डाल कर अनामिका और अङ्गुष्ठ से पकड़े हुये पवित्रों से उस प्रोक्षणीस्थ जल का उत्पवन करे और प्रणीता के जल से प्रोक्षणीस्थ जल का पवित्रों द्वारा तीन बार अभिषेचन करके प्रोक्षणीपात्र के जल से आसादन किये आज्यस्थाली आदि का प्रोक्षण करके अग्नि और प्रणीतापात्र के बीच में प्रोक्षणीपात्र को रख देवे। तब आज्यस्थाली में घृतपात्र से घृत निकाल उस को अग्नि पर धरके सूखे कुश जलाकर घी के ऊपर प्रदक्षिण भ्रमण कराके अग्नि में जलते कुश फेंक कर स्रुवा को तीन बार अग्नि में तपा के समार्जन कुशों के अग्रभाग से भीतर को ओर कुशों के मूलभाग से बाह-

दकेनाभ्युक्ष्य पूर्ववत् त्रिः प्रताप्य दक्षिणतो निदध्यात् । ततः-प्रदक्षिणक्रमेणाग्नित आज्यमवतार्याग्रतो निदध्यात् । ततः प्रोक्षणीवत्त्रिराज्यमुत्पूयावेक्ष्य सत्यपद्रव्ये तन्निरसनं पूर्ववत्प्रोक्षण्युत्पवनं ततउत्थाय उपयमनकुशानादाय वामहस्ते कृत्वा प्रजापतिं मनसा ध्यात्वा तूष्णीमग्नौ घृताक्ताः समिधस्तिस्रः प्रक्षिपेत् । तत उपविश्य सपवित्रप्रोक्षण्युदकेन प्रदक्षिणक्रमेणाग्निं पर्युक्ष्य प्रणीतापात्रे पवित्रे कृत्वा ब्रह्मणान्वारब्धः पातितदक्षिणजानुः समिद्धतमेऽग्नौ जुहुयात् । तत्र प्रत्याहुत्यन्तरं स्रुवावस्थितहुतशेषघृतस्य प्रोक्षणीपात्रे प्रक्षेपः । ततो वक्ष्यमाण क्रमेणाघाराज्यभागमहाव्याहृति सर्वप्रायश्चित्तहोमान् कुर्यात् ।

र की ओर स्रुवा को झाड पोंछ शुद्धकर तथा प्रणीता के जल से सेचन करके और फिर तीन बार तपा के अग्नि से दक्षिण की ओर स्रुवा को धर देवे । तत्पश्चात् तपते हुए घी को अग्नि से उतार के उत्तर में धरे । तब तीन बार प्रोक्षणी के तुल्य पवित्रों से घी का उत्पवन करके देखे यदि घृतमें कुछ निकृष्ट वस्तु हो तो निकाल कर फेंक देवे और फिर तीन बार प्रोक्षणीपात्र का उत्पवन करे । तदनन्तर उठ कर उपयमनकुशों को वाम हाथ में लेके प्रजापति का मन से ध्यान करके घृत में डुबोई तीन समिधाओं को तूष्णीं बिना मन्त्र पढ़े एक २ कर अग्नि में चढ़ावे । फिर बैठ कर पवित्र सहित प्रोक्षणी के जल को प्रदक्षिणक्रम से ईशानकोण से लेकर उत्तर दिशा तक अग्नि के सब ओर सेचन करे अर्थात् प्रोक्षणीपात्र का सब जल पर्युक्षण में गिरा देवे । प्रणीतापात्र में दोनों पवित्र रखके प्रोक्षणी पात्र का विसर्जन करे । तदनन्तर दहिने घोंटू को भूमि में टेक कर ब्रह्मा से अन्वारब्ध हुआ यजमान प्रज्वलित अग्नि में स्रुवा से आज्याहुतियों का होम करे । वहां २ जब २ आहुति देने पश्चात् स्रुवा में जो घृतबिन्दु बचें उन को प्रोक्षणीपात्र में डालता जावे । प्रजापति का ध्यान

ओं-प्रजापतये स्वाहा । इदं प्रजापतये न मम ॥१॥ इति मनसा ।

ओं-इन्द्राय स्वाहा । इदमिन्द्राय नमम ।
ओं-अग्नये स्वाहा । इदमग्नये नमम ।
ओं-सोमाय स्वाहा । इदं सोमाय नमम ।
ओं-भूः स्वाहा । इदमग्नये नमम ॥५॥
ओं-भुवः स्वाहा । इदं वायवे नमम ॥६॥
ओं-स्वः स्वाहा । इदं सूर्याय नमम ॥७॥

ओं-त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वान्देवस्य हेडोऽअवयासिसीष्ठाः । यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषांसि प्रमुमुग्ध्यस्मत्स्वाहा । इदमग्नीवरुणाभ्यां नमम ॥८॥ ओं-स त्वन्नो अग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठो अस्या उषसो व्युष्टौ । अवयक्ष्व नो वरुणंरराणो वीहि मृडीकं सुहवो न एधि स्वाहा । इदमग्नीवरुणाभ्यां नमम ॥९॥ ओं-अयाश्चाग्नेऽस्यनभिशस्तिपाश्च सत्यमित्त्वमया-

---

कर पूर्वाधार की सूच्छों आहुति देवे । त्याग सब यजमान स्वयं बोलता जाय। आधार की दो आज्यभाग की दो और महाव्याहृतियों की तीन सर्वप्राय-

असि । अया नो यज्ञं वहास्यया नो धेहि भेषजꣳ स्वाहा। इदमग्नये नमम ॥१०॥ ओं ये ते शतं वरुण ये सहस्रं यज्ञियाः पाशा वितता महान्तः । तेभिर्नो अद्य सवितोत विष्णुर्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्काः स्वाहा। इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्यो मरुद्भ्यः स्वर्केभ्यश्च नमम ॥११॥ ओं-उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं विमध्यमꣳ श्रथाय । अथावयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम स्वाहा। इदं वरुणाय नमम।

ओं-प्रजापतये स्वाहा । इदं प्रजापतये नमम ॥१३॥ इति मनसा प्राजापत्यम् ।

ओं-अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा । इदमग्नये स्विष्टकृते नमम ॥१४॥ इति स्विष्टकृत् ।

अथ संस्रवप्राशनम् । तत आचम्य-

ओं-अद्यामुष्य कुमारस्य कृतैतच्चूडाकरणहोमकर्मणि कृताकृतावेक्षणरूपब्रह्मकर्म-

---

ष्टित की पांच तथा प्राजापत्य और स्विष्टकृत् दो सब चौदह आहुति त्यागों सहित देके संस्रवप्राशन कर हाथ धो आचमन करके ब्रह्मा को दक्षिणा देवे

प्रतिष्ठार्थमिदं पूर्णपात्रं प्रजापतिदैवतममुक-गोत्रायाऽमुकशर्मणे ब्राह्मणाय ब्रह्मणे दक्षिणां तुभ्यमहं संप्रददे। इति ब्रह्मणे दक्षिणां दद्यात्।

ओं-स्वस्तीति प्रतिवचनम्। ततः-

ओं-सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु॥

इति पवित्राभ्यां प्रणीताजलमानीय तेन शिरः संमृज्य-

ओं-दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः॥

इत्यैशान्यां प्रणीतान्युब्जीकरणं ततःस्तरणक्रमेण बर्हिरुत्थाप्याज्येनाभिघार्य-

ओम्-देवा गातुविदो गातुं वित्वा गातुमित। मनसस्पतइमं देवयज्ञं स्वाहा वाते-धाः स्वाहा॥ इदं वाताय नमम॥

इति मन्त्रेण बर्हिर्होमः। अथ शीतोदकमुष्णोदकेन-

ओम्-उष्णेन वाय उदकेनेह्यदिते केशान्वप।

उस में (ओमद्येनस्मिन्०) इत्यादि संकल्प करे। और ब्रह्मा ओ स्वस्ति कह कर दक्षिणा लेवे। तदनन्तर पवित्रो द्वारा प्रणीता का जल लेकर (ओ सुमित्रि०) मन्त्र पढ़ के अपने शिर पर जलसेचन करके (ओ दुर्मित्रिया०) मन्त्र से प्रणीता के शेष जलको ईशान दिशा में लौट देवे और पवित्रो को बिछाये हुए कुशो में मिला देवे तब जिस क्रम से कुश बिछाये थे उसी क्रम से पवित्रों सहित उठा कर कुशा में घी लगा के हाथ से ही कुशों का होम (ओं देवागातुवि०)मन्त्र पढ़ के त्याग के साथ कर देवे। तब शीतल जल को गर्म जल के साथ (उ-

इति मन्त्रेणाभिषिच्य तक्रमिश्रितोदके नवनीताद्यन्यतमपिण्डं तूष्णीं प्रक्षिप्य दक्षिणपश्चिमोत्तरक्रमेण पूर्वनिशाबद्धकुमारकेशजूटिकात्रये दक्षिणजूटिकाम्–

ओम्–सवित्रा प्रसूता दैव्या आपउन्दन्तु ते तनुं दीर्घायुत्वाय वर्चसे ॥

इति मन्त्रं पठित्वा तेनैव मिश्रितवारिणा प्रक्षाल्य ततो दक्षिणभागस्थितजूटिकाभागत्रयं कुर्यात्। तत्र–एकामेकां जूटिकां प्रति कुशपत्रत्रयसंयोजनं कुर्यात्। शल्लकी कण्टकेन तूष्णीं विवरणं कृत्वा भागत्रयं कुर्यात्। ततः सप्तविंशतिकुशपत्रतः पत्रत्रयमानीय तत्केशमूलसंलग्नाग्रजूटिकाप्रथमभागमध्यान्तरितं कुर्यात्।

ओम्–ओषधे त्रायस्व स्वधिते मैनꣳहिꣳसीः। शिवो नामासि स्वधितिस्ते पिता नमस्ते अस्तु मा माहिꣳसीः ॥

स्तेन वाय०) मन्त्र से मिलाके थोड़ा मट्ठा भी जल में मिलादे उस मट्ठा मिले जल में नवनीत—नैनू—मक्खन का वा दही का थोड़ा अंश डाले तब पूर्वाभिमुख बैठे बालक के शिर के दक्षिण पश्चिम तथा उत्तर में तीनों ओर पहिले से बालों के तीन जूड़ा बांध रक्खे हों उनमें से दहिने जूड़ा को (ओं सवित्रा०) मन्त्र पढ के उस घृतादि मिलाये जल से भिगोवे। तदनन्तर दहिने भाग के जूड़ा बाधे केशों के तीन भाग करे उन एक एक भाग में तीन २ कुश लगावे। अर्थात् तीन स्थानों में श्वेत सेही के कांटे से प्रथम बालों को अलग २ करके तीन भाग करे तदनन्तर सत्ताईश कुशों में से तीन कुश लेकर उन कुशों के अग्रभाग को दहिने केशों के तीन भागों में से पहिले भाग के मूलमें (ओषधे०) मन्त्र पढ के लगावे। तदनन्तर (शिवो नामासि०) मन्त्र पढके लोह का छुरा

इति मन्त्रेण लोहक्षुरं गृहीत्वा–

ओम्–निवर्तयाम्यायुषेऽन्नाद्याय प्रजननाय रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्याय।

इति मन्त्रेण जूटिकासंलग्नं कुर्यात्। ततः कुशपत्रत्रयसहितां जूटिकां छिनत्ति–

ओम्–येनावपत्सविता क्षुरेण सोमस्य राज्ञो वरुणस्य विद्वान्। तेन ब्रह्माणो वपतेदमस्यायुष्यं जरदष्टिर्यथासत्॥

इति मन्त्रेण पश्चिमजूटिकाछेदनं कुर्यात्। ततस्तांल्लूनकुशपत्रत्रयसहितान् अनुडुद्गोमयपिण्डोपरि उत्तरस्यां दिशि निदध्यात्। अत्रैव पूर्वप्रक्षालितपरभागद्वये कुशपत्रत्रितयान्तर्निधानादिच्छेदनवर्ज्जं सर्वं पूर्ववदेव कृत्वा छेदनं तूष्णीं ततः पश्चिमजूटिकायां पूर्ववत्तेनैव मन्त्रेण प्रक्षालनं तूष्णीं शल्लकीकण्टकेन भागत्रयकरणं केशमूलसंलग्नकेशान्तरितमध्यकुशपत्रत्रयधारणक्षुरग्रहणतत्संयोजनानि तत्तन्मन्त्रेणैव कुर्यात्। तत्र प्रथमजूटिकाछेदने मन्त्रः–

हाथमें लेकर (निवर्त्तया०) मन्त्रसे बालोंमें छुरा लगाके (येनावपत्सविता०) मन्त्र पढ़के दहिने केशोंके तीन भागोंमें से पश्चिम भाग को कुशो सहित काटे। उन तीन कुशों सहित काटे केशो को बैल के गोबर पर उत्तर को ओर रक्खे तब पहिले भिगोये दहिने दो भागो में तीन २ कुश रखना आदि केशछेदन छोड़ कर पूर्व के तुल्य सब कामकरे और केशोका छेदन बिना मन्त्र पढ़े तूष्णीं करे। तदनन्तर शिर के पश्चिम भाग के जूड़ा में पूर्ववत् उसी मन्त्र से बालों का भिगोना तथा बिना मन्त्र पढ़े सेही के काटे से केशो के तीन भाग करना केशों के मूल में लगे बालो से ढपे तीन कुशो को रखना छुरा का हाथ में लेना और बालो में लगाना उन २ उक्त मन्त्रो से करे। उस में पश्चिम की प्रथम जूटिका

ओम्–त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम्। यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नो अस्तु त्र्यायुषम्॥

इति मन्त्रेण छित्त्वा पूर्ववद्गोमयपिण्डोपरि निदध्यात्। तत्रावशिष्टभागद्वये कुशपत्रत्रयं केशान्तर्निधा नादिच्छेदनवर्जं सर्वं पूर्ववदेवच्छेदनं तूष्णीमेव कुशपत्रत्रयसहितलूनकेशानां गोमयपिण्डोपरि धारणं च तत उत्तरभाग जूटिकायां प्रक्षालनादिक्षुरसंयोजनान्तेषु पूर्ववत्तत्तन्मन्त्रप्रयोगः प्रथमभागजूटिकायां छेदने मन्त्रः–

ओं–येन भूरिश्चरा दिवं ज्योक्च पश्चाद्धि सूर्यम्। तेन ते वपामि ब्रह्मणा जीवातवे जीवनाय सुश्लोक्याय स्वस्तये॥

ततः केशान् गोमयपिण्डोपरि निदध्यात्। ततोऽवशिष्टभागद्वये कुशपत्रत्रये केशान्तर्निधानादिच्छेदनवर्ज्जं सर्वं पूर्ववच्छेदनं तूष्णीं गोमयपिण्डोपरि धारणमपि ततः

के काटने का मन्त्र (त्र्यायुषं०) है। छेदन करके पहिले के तुल्य केशों का बैल के गोबर पर रक्खे। और पश्चिम के शेष दो भागों में तीन २ कुशों को केशों के भीतर रखना आदि केशछेदन को छोड़ के सब काम पूर्ववत् ही करे। और तूष्णीं केशों का छेदन करके कुश सहित केशों को गोबर पर धरे। तदनन्तर शिर के उत्तरभाग के जूड़ा में भिगोना आदि केशों में छुरा लगाने पर्यन्त पूर्ववत् उस २ मन्त्र का प्रयोग करना चाहिये। उत्तर के तीन भागों में से प्रथम भाग के केश (येनभूरि०) मन्त्र से काटे। तब उन कुश सहित केशों को भी गोबर पर धरे। तदनन्तर शेष रहे उत्तर के दो भागों में तीन २ कुशों को केशों के

पश्येमाक्षभिर्यजत्राः । स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाᳬंसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥

इति मन्त्रेण दक्षिणकर्णमभिमन्त्र्य–

ओं वक्ष्यन्ती वेदागनीगन्ति कर्णं प्रियᳬं सखायं परिषस्वजाना। योषेव शिङ्क्ते वितताधिधन्वञ्ज्याइयᳬं समने पारयन्ती ॥

इति मन्त्रेण वामकर्णमभिमन्त्रयेत् । ततो मध्यं वीक्ष्य नापितद्वारा वेधयेत्। तस्मिन् समये मधुरादिदानं समाचारात् । ततो ब्राह्मणभोजनम् । इति कर्णवेधः ॥९॥

मन्त्रण करके (वक्ष्यन्ती०) मन्त्र से बायें कान का अभिमन्त्रण करे अर्थात् दहिने बायें कान की ओर देखता हुआ इस २ मन्त्र को पढे। तब कान का मध्यभाग देख कर नाई के द्वारा कान का वेधन [छेदन] करावे। तदनन्तर ब्राह्मणों को भोजन करावे या शक्त्यनुसार सीधा देदेवे ॥ इति कर्णवेध समाप्त ॥

अथोपनयनसंस्कारप्रस्तावः ॥

आचार्यस्य धर्मेण वेदवेदाङ्गाध्यापनपरस्य धार्मिकस्य विदुषः समीपे येन विधिना येन लिङ्गेन कृत्येन च सह बालो नीयते सउपनयनविधिः । तस्य च वर्णभेदेन कालभेद उच्यते—

गर्भाष्टमेऽब्देकुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम् ।
गर्भादेकादशेराज्ञो गर्भात्तुद्वादशेविशः ॥

अष्टवर्षं ब्राह्मणमुपनयेद्गर्भाष्टमे वा । एकादशवर्षं राजन्यम् ॥ द्वादशवर्षं वैश्यम् ॥ इति पारस्करः ।

ब्रह्मवर्चसकामस्य कार्यंविप्रस्यपञ्चमे ।
राज्ञोबलार्थिनःषष्ठे वैश्यस्येहार्थिनोऽष्टमे ॥
कार्पासमुपवीतंस्याद्विप्रस्योर्ध्ववृतंत्रिवृत् ।
शणसूत्रमयंराज्ञो वैश्यस्याविकसौत्रिकम् ॥

भावार्थः—उपनयन या यज्ञोपवीत संस्कार का प्रथम प्रस्ताव लिखते हैं । धर्म के साथ वेद वेदाङ्ग पढाने में तत्पर धर्मात्मा विद्वान् आचार्य के समीप में जिस विधि, जिस चिह्न को धारण वा क्रिया को कराके बालक विधिपूर्वक वेदाध्ययनार्थ लाया जाय उस विधि वा कर्मका नाम उपनयन वा यज्ञोपवीत संस्कार है ब्राह्मणादि के वर्णभेद से उसमें कालभेद वा वस्तुभेद दिखाते हैं । गर्भ से वा जन्म से ब्राह्मण का आठवेंवर्ष, गर्भ से वा जन्म से क्षत्रिय का ग्यारहवें वर्ष और गर्भ से वा जन्म से वैश्य का बारहवेंवर्ष उपनयन संस्कार करे । मनु तथा पारस्करादि सब के मत मे विकल्प है । ब्रह्मवर्चसतेज चाहने वाले ब्राह्मण का पांचवें, बल चाहने वाले क्षत्रिय का छठे और इसी शरीर में धनादि ऐश्वर्य चाहने वाले वैश्य का आठवें वर्ष यज्ञोपवीत करे । कपासजन्य सूत का ब्राह्मण के लिये, शणका क्षत्रिय को और भेड़ की ऊन का वैश्य को धारण करना चाहिये । वा यथासम्भव जो प्राप्त हो उसी को सब धारण करें ।

तत्र यज्ञसूत्रनिर्माणधारणविषये किञ्चिल्लिख्यते ।

त्रिवृदूर्ध्ववृतंकार्यं तन्तुत्रयमधोवृतम् ।

त्रिवृतंचोपवीतंस्या–त्तस्यैकोग्रन्थिरिष्यते ॥

वामावर्त्तं त्रिगुणं कृत्वा प्रदक्षिणावृत्तं नवगुणं तदेव त्रिदोरकं कृत्वा ग्रन्थिमेकं विदध्यात् ॥

पृष्ठवंशेचनाभ्यांच धृतंयद्विन्दतेकटिम् ।

तद्धार्यमुपवीतंस्या–न्नातिलम्बंनचोच्छ्रितम् ॥

वामस्कन्धेधृतेनाभि–हृत्पृष्ठवंशयोर्धृतम् ।

यथाकटिपर्यन्तं प्राप्नोति तावत्परिमाणं कर्त्तव्यमित्यर्थः ।

कार्पासक्षौमगोवाल–शाणवल्कतृणादिनाम् ।

सदासम्भवतोधार्य–मुपवीतंद्विजातिभिः ॥

शुचौदेशेशुचिःसूत्रं संहताङ्गुलिमूलके ।

आवेष्ट्यषण्णवत्यातत् त्रिगुणीकृत्ययत्नतः ॥

यज्ञोपवीत बनाने तथा पहरने के विषय में कुछ लिखते हैं । तीन डोरा इकट्ठे कर ऊपर को बाईं ओर को प्रथम ऐंठे पश्चात् उस को तिगुना कर नीचे को दहिना ऐंठ कर नौ तार का एक डोरा बनाकर उस को तिगुना कर एक जगह गांठ लगावे ऐसी नौतार वाली तीन लड़ी का यज्ञोपवीत होना चाहिये। बायें कन्धे से पीछे पीठ के बीच से, आगे नाभिस्थान में धारण किया जो कटि भाग तक पहुंचे ऐसा यज्ञोपवीत पहरना चाहिये किन्तु इस से अधिक लम्बा वा ऊंचा न हो । कपास, अलसी, गौके बाल, शण, बवकल और तृणादि इन में से जिस देश काल में जिस का मिलना सम्भव हो उसी का यज्ञोपवीत ब्राह्मणादि लोग बनाकर पहनें । सब मिलें तो कपास का ब्राह्मण शणका क्षत्रिय और ऊनका वैश्य पहने। शुद्ध स्थानमें स्वय शुद्ध हुआ पुरुष सब अंगुलियों के मूलोंको मिलाकर छानवे बार सूतको लपेटकर तिगुना करके (आपोहिष्ठा०) इत्यादि तीन

अप्लिङ्गकैस्त्रिभि:सम्यक् प्रक्षाल्योर्ध्ववृत्तंचतत् ।
अप्रदक्षिणमावृत्तं सावित्र्यात्रिगुणीकृतम् ॥
अधःप्रदक्षिणावृत्तं समंरयान्नवसूत्रकम् ।
त्रिरावेष्ट्यदृढंबद्ध्वा ब्रह्मविष्णुशिवान्नमेत् ॥
यज्ञोपवीतंपरम--मितिमन्त्रेणधारयेत् ।
सूत्रंसलोमकंचेत्स्या—त्ततःकृत्वाविलोमकम् ॥
सावित्र्यादशकृत्वोऽद्भि—र्मन्त्रिताभिस्तदुक्षयेत् ।
विच्छिन्नंवाप्यधोयातं भुक्त्वानिर्मितमुत्सृजेत् ॥
स्तनादूर्ध्वमधोनाभे र्नधार्यंतत्कथंचन ।
ब्रह्मचारिणएकंस्या—त्स्नातस्यद्वेबहूनिवा ॥
तृतीयमुत्तरीयार्थे वस्त्राभावेतदिष्यते ।
ब्रह्मसूत्रेतुसव्येऽसे स्थितेयज्ञोपवीतिता ॥

मन्त्रो से उस त्रिगुण सूत का सम्यक् प्रक्षालन करबायीं ओर से ऊपर को ऐंठे फिर नौतार करके सावित्रीमन्त्र से प्रदक्षिण ऐंठे । ऐसे नौ सूत के एक डोरा को तिगुना कर गांठ लगाके उत्पत्ति स्थिति प्रलयकर्त्ता ईश्वर को नमस्कार करे तदनन्तर (यज्ञोपवीतं परमं०) मन्त्र से धारण करे । यज्ञोपवीत सूत्र में किसीके बाल लग गयेहों तो उन बालों को निकाल के गायत्री मन्त्र से जल को पढ २ दशवार उस का सेचन कर पवित्र करे । टूट गया हो वा नाभि से नीचेके भाग में आगया हो तो ऐसे यज्ञोपवीत को त्याग के नया बनाया विधिपूर्वक पहिने स्तनों से ऊपर कण्ठमात्र में वा नाभि से नीचे यज्ञोपवीत को कदापि धारण न करे । ब्रह्मचारी एक यज्ञोपवीत पहने स्नातक गृहस्थ दो वा तीन चार आदि यज्ञोपवीत पहने । यदि शरीर पर अंगोछा न हो तो अवश्य ही तीसरा यज्ञोपवीत अंगोछा के स्थान में धारण करे । बायें कन्धे पर से पहने तो पुरुष उपवीती वा यज्ञोपवीती कहाता ऐसा पहनकर देव कर्म करे । दहिने कन्धे

प्राचीनावीतिताऽसव्ये कण्ठस्थेतुनिवीतिता ।

यदि नियतेऽष्टमवर्षादिकाले बालस्य शक्तिः कर्मानुष्ठातुं न स्याद्वा केनापि कारणेन पिता नियतकाले संस्कारं कर्त्तुं न शक्नुयात्तदा ।

आषोडशाद्ब्राह्मणस्य-सावित्रीनातिवर्त्तते ।
आद्वाविंशात्क्षत्रबन्धो-राचतुर्विंशतेर्विशः ॥
अतऊर्ध्वंत्रयोऽप्येते यथाकालमसंस्कृताः ।
सावित्रीपतिताव्रात्या भवन्त्यार्यविगर्हिताः ॥

व्रात्यसंस्कारश्चशास्त्रोक्तप्रायश्चित्तानुष्ठानपूर्वको यथा सम्भवति तथाऽग्र एतत्संस्कारान्ते वक्ष्यामः ।

मेखलामजिनं दण्ड-मुपवीतं कमण्डलुम् ।
अप्सुप्रास्यविनष्टानि गृह्णीतान्यानिमन्त्रवत् ॥

अवशिष्टा चेतिकर्त्तव्यता संस्कारान्ते द्रष्टव्या ॥

इति प्रस्तावः ।

से पहिने तो प्राचीनावीती अपसव्य कहाता ऐसा पहन कर पितृकर्म करे और कण्ठ में माला के समान पहरना निवीती कहाता है ऐसा पहन के ऋषिकर्म करे । यदि आठवें आदि नियत वर्ष में बालक को कर्म करने की शक्ति न हो तो अथवा किसी कारण नियत समय पिता संस्कार न करसके तो १६ वर्ष तक ब्राह्मण का २२ तक क्षत्रिय का और २४ वर्ष तक वैश्य का संस्कार हो सकता है । इस से आगे तीनों पतित हो जाते हैं उन का संस्कार शास्त्रोक्त प्रायश्चित्त होकर जैसा हो सकता है सो आगे कहेंगे । मेखला, मृगचर्म, दण्ड, यज्ञोपवीत और कमण्डलु ये नष्ट हो जाय तो ब्रह्मचारी इन को जल में डाल के मन्त्र पूर्वक नये धारण करे । इस विषय का शेष विचार संस्कार के अन्त में देखो । आरम्भ में वा जब २ बीच में यज्ञोपवीत धारण की आवश्यकता हो तब २ इसी उक्त प्रकार यज्ञोपवीत को बनावे तथा पहने ॥

अथोपनयनविधिः ॥

तत्रोत्तरायणे शुक्लपक्षे पुण्येऽहनि [चन्द्रे, बुधे, बृह०, शुक्रे] स्वस्तिपुण्याहवाचनादिपूर्वकमेतत्कर्मारभेत ॥

ब्राह्मणान् कुमारं च भोजयित्वा बहिःशालायां पञ्चभूसंस्कारपूर्वकं लौकिकाग्निं स्थापयित्वा पर्युप्तशिरसं रत्नसुवर्णादिभिर्यथाशक्त्यलङ्कृतमुपनेयं कुमारमाचार्यपुरुषा आचार्यसमीपं [सत्यवाग्धृतिमान्दक्षः सर्वभूतदयापरः। आस्तिकोवेदनिरतः शुचिराचार्यउच्यते] संस्कारार्थमानीयाग्नेः पश्चात्पूर्वाभिमुखमुपवेशयेयुः। आचार्यः स्वस्माद्दक्षिणस्यां

उत्तरायण शुक्लपक्ष और चन्द्र, बुध, बृहस्पति शुक्र इन पुण्यदिनों में तथा अच्छे पुण्य नक्षत्र में स्वस्तिवाचनादि मङ्गलकृत्य करके इस कर्म का आरम्भ करे।

अब यहां यज्ञोपवीत संस्कार का विधान लिखते हैं। ब्राह्मणो और बालक को भोजन कराके अग्न्याधान की शाला से भिन्न अन्य बाह्य शाला [जो मण्डप इसी संस्कार के लिये पृथक् बनाया हो] में जहां भूसी केश वा कंकड़ादि न हो ऐसी शुद्ध भूमि में एक हाथ चतुष्कोण वेदि बनावे उस वेदि का कुशों से परिसमूहन २-गोबर और जलसे लीपना, ३-स्त्रुवा के मूल से प्रागग्र उदक्संस्थ प्रादेशमात्र तीन रेखा करना, ४-उल्लेखन क्रम से अनामिका और अंगुष्ठद्वारा मट्टी को उठा २ कर फेंकना, ५-जल से वेदि का अभ्युक्षण करना। इस प्रकार पंचभूसंस्कार करके आचार्य पूर्वाभिमुख हो वेदि में अग्नि को स्थापित करे। पञ्चभूसंस्कार तथा अग्निस्थापन आचार्य ही करे। तब बालक के सब बाल मुड़ाके स्नान करा यथाशक्ति सुवर्णादि के आभूषण जिस को पहनाये हो ऐसे बालक को आचार्य अपने अन्य शिष्य द्वारा बुलवाके अग्नि से पश्चिम में अपने से दहिनी ओर खड़ाकरे वा बैठावे-[सत्यवादी, धीरज वाला चतुर, सब प्राणियो पर दयालु आस्तिक वेद के पढने पढाने में तत्पर पवित्र रहने वाला विद्वान् आचार्य कहाता है] वह आचार्य अपने से दक्षिण दिशा में बैठे

दिश्यवस्थितं बालम्-ब्रह्मचर्यमागामिति ब्रूह्हि। बालस्तथा वदेत्। ततो ब्रह्मचार्यसानीति ब्रूह्हि-इत्याचार्यः। बालस्तथा वदेत्। ततो येनेन्द्रायेत्याचार्यः कुमारं वासः परिधापयेत्।

ओं-येनेन्द्राय बृहस्पतिर्वासः पर्यदधादमृतम्। तेन त्वा परिदधाम्यायुषे दीर्घायुत्वाय बलाय वर्चसे॥

[अत्र वासइति जातावेकवचनम्। तेन यावत्प्रयोजनं तावन्ति ब्रह्मचर्याश्रमस्य शाणादीन्यधोर्ध्ववस्त्राणि कौपीनादीन्यनेनैव मन्त्रेण परिधापयेत्] ततो माणवकस्य द्विराचमनम्। तत आचार्य इयंदुरुक्तमिति मन्त्रेण युवासुवासा इति मन्त्रेण वा तूष्णीं वा ब्रह्मचारिणः कटिप्रदेशे प्रवरसंख्याग्रन्थियुतां त्रिवृतां मौञ्ज्यादिकां मेखलां बध्नीयात् प्रादक्षिण्येन परिवेष्टयेत्॥

ओम्-इयं दुरुक्तं परिबाधमाना वर्णं पवित्रं पुनतीमआगात्। प्राणापानाभ्यां ब-

---

बालक से (ब्रह्मचर्य०) वाक्य कहे और बालक भी उस का वैसा ही उत्तर उसी वाक्य से देवे। तब आचार्य (ब्रह्मचार्यसानि) इस वाक्य को बालक से कहलावे और बालक वैसा ही कहे। तदनन्तर आचार्य (येनेन्द्राय०) मन्त्र पढ़के वस्त्र पहनावे। वस्त्र कहने से कौपीन, उसके ऊपर लपेटने का वस्त्र और ऊपर से ओढ़ने आदि का जो २ वस्त्र ब्रह्मचारी को आवश्यक हो वह २ सब इसी मन्त्रसे उसी समय पहना देवे। ये ही वस्त्र ब्रह्मचर्याश्रम में रहेंगे। ब्राह्मण ब्रह्मचारी को शण के क्षत्रिय को अलसी के और वैश्य को ऊन के वस्त्र देवे। तब बालक को दोबार आचमन करावे। तदनन्तर आचार्य (इयं दुरुक्तं०) मन्त्रसे वा (युवासु०)

'लमादधाना स्वसा देवी सुभगा मेखलेयम् ॥
ओंयुवा सुवासाः परिवीत आगात्स उ श्रेयान्
भवति जायमानः । तं धीरासः कवय उन्न-
यन्ति स्वाध्यो मनसा देवयन्तः ॥

तत आचार्यो ब्रह्मचारिणे यज्ञसूत्रं दद्यात् । स च यज्ञोपवीतमिति मन्त्रं पठित्वा दक्षिणबाहुमुद्धृत्य वामस्कन्धे यज्ञोपवीतं परिदधीत–

ओम्–यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्स-
हजं पुरस्तात् । आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं
यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः । यज्ञोपवीतमसि
यज्ञस्य त्वा यज्ञोपवीतेनोपनह्यामि ॥

तत आचार्यो ब्रह्मचारिणे उत्तरीयार्थमजिनं प्रयच्छेत् । सच मित्रस्य चक्षुरिति मन्त्रेण तूष्णीं वा कृष्णाजिनं रौरवं वारतं वा चर्म परिदधीत ।

ओम्–मित्रस्य चक्षुर्धरुणं बलीयस्तेजो यश-

मन्त्रसे अथवा तूष्णीं विना मन्त्रके ब्रह्मचारी के जितने प्रवर हों उतनी गांठों वाली मूंज आदि की मेखलाको ब्रह्मचारी के कटिभाग में प्रदक्षिण क्रमसे लपेटकर बांधे फिर आचार्य अपने हाथ से ब्रह्मचारी को यज्ञोपवीत देवे और बालक यज्ञोपवीत को अपने हाथ में लेकर (यज्ञोपवीत०) मन्त्र पढके दहिने बाहु को उठाकर बायें कन्धे से यज्ञोपवीत पहने । तदनन्तर आचार्य ब्रह्मचारी को ऊपर से ओढने के लिये मृग चर्म देवे । और (मित्रस्य चक्षु०) मन्त्र से वा तूष्णीं ब्राह्मणादि के वास्ते कसायल आदि के चर्म को धारण करे ।

स्विरस्थविरत्थंसमिद्धमनाहनस्यं वसनं जरिष्णु परीदं वाज्यजिनं दधेऽहम् ॥

तत आचार्यो ब्रह्मचारिणे तूष्णीं दण्डं प्रयच्छेत्-स ब्रह्मचारी च यो मे दण्डइति पठित्वा दण्डं प्रतिगृह्णीयात्।

ओम्-यो मे दण्डः परापतद्वैहायसोऽधिभूम्याम्। तमहं पुनरादद आयुषे ब्रह्मणे ब्रह्मवर्चसाय ॥

केचिदाचार्याः सोमयागदीक्षावदत्र दण्डविधिमिच्छन्ति। तद्यथा-अध्वर्युर्यजमानमुखसंमितमौदुम्बरं दण्डं यजमानाय समर्पयेत्। स दीक्षितो यजमान उच्छ्रयस्वेति मन्त्रेणोर्ध्वं कुर्यात्। एवं ब्रह्मचार्यपि दण्डमुच्छ्रयेत्। ततो दण्डप्रदानानन्तरमाचार्योऽस्य वटोरञ्जलिं स्वकीयाञ्जलिस्थाभिरद्भिरापोहिष्ठेति तृचेन पूरयेत्-

ओमापोहिष्ठामयोभुव-स्तानऊर्जेदधातन।

तदनन्तर आचार्य तूष्णीं ब्रह्मचारी को बिल्व वा पलाशादि का दण्ड देवे और वह ब्रह्मचारी (यो मे दण्डः०) मन्त्र पढ़के दण्ड को आचार्य के हाथ से लेवे। कोई आचार्य लोग सोमयाग की दीक्षा के समान यहां भी दण्ड ग्रहण का विधान कहते हैं। वहां सोमयाग में रीति यह है कि अध्वर्यु यजमान के मुख तक ऊंचा गूलर का दण्ड यजमान को देता और दीक्षित यजमान उस दण्ड को (उच्छ्रयस्व०) मन्त्र पढ़के ऊपर को ऊंचा उठाता है। यहां अध्वर्युस्थानी आचार्य और दीक्षित यजमान ब्रह्मचारी माना जायगा। तब दण्ड देने पश्चात् आचार्य अपनी अञ्जलि को जल से भरके ब्रह्मचारी की अञ्जलि को अपनी अञ्जली के जल से (आपो हिष्ठा०) इत्यादि तीन मन्त्रों से भरे [आचार्य और ब्रह्म-

महेरणायचक्षसे ॥१॥ ओम्-योवःशिवतमोर-
स-स्तस्यभाजयतेहनः। उशतीरिवमातरः ॥२॥
ओम्-तस्माअरंगमामवो यस्यक्षयायजिन्वथ।
आपोजनयथाचनः ॥

[आचार्यवटुकौ तूष्णीं स्वस्वाञ्जली जलेन पूरयित्वा-ऽऽचार्यः स्वाञ्जलिना वटुकाञ्जलिमवक्षारयेत्तत्सवितुर्वृणी-महइति मन्त्रेण-

ओम्-तत्सवितुर्वृणीमहे वयंदेवस्य भोजनम्।
श्रेष्ठं सर्वधातमं तुरं भगस्य धीमहि ॥

इत्याश्वलायनगृह्ये विशेषः] तत आचार्यः-सूर्यमुदीक्षस्व--इति वाक्येन ब्रह्मचारिणं प्रेषयेत्-वटुश्च तच्चक्षुरिति मन्त्रं पठन् सूर्यमुदीक्षेत-

ओम्-तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्।
पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं शृ-
णुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः
स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥

चारी दोनों अपनी २ अञ्जलियों को बिना मन्त्र पढ़े जल से भरके आचार्य अपनी अञ्जलि के जल को (तत्सवितुर्वृणी०) मन्त्र से ब्रह्मचारी के अञ्जलिस्थ जल में गिरावे। यह आश्वलायनगृह्यसूत्रानुसार भेद है]

तदनन्तर (सूर्यमुदीक्षस्व) इस वाक्य से आचार्य ब्रह्मचारी से प्रेष कहे और ब्रह्मचारी (तच्चक्षुर्देव०) मन्त्र पढ़के सूर्य को देखे [आचार्य स्वयं (देव सवित

स्विरस्थविरत्वं समिद्धमनाहनस्यं वसनं जरिष्णु परीदं वाज्यजिनं दधेऽहम् ॥

तत आचार्यो ब्रह्मचारिणे तूष्णीं दण्डं प्रयच्छेत्—स ब्रह्मचारी च यो मे दण्डइति पठित्वा दण्डं प्रतिगृह्णीयात्।

ओम्—यो मे दण्डः परापतद्वैहायसोऽधिभूम्याम्। तमहं पुनरादद आयुषे ब्रह्मणे ब्रह्मवर्चसाय ॥

केचिदाचार्याः सोमयागदीक्षावदत्र दण्डविधिमिच्छन्ति। तद्यथा—अध्वर्युर्यजमानमुखसंमितमौदुम्बरं दण्डं यजमानाय समर्पयेत्। स दीक्षितो यजमान उच्छ्रयस्वेति मन्त्रेणोर्ध्वं कुर्यात्। एवं ब्रह्मचार्यपि दण्डमुच्छ्रयेत्। ततो दण्डप्रदानानन्तरमाचार्योऽस्य वटोरञ्जलिं स्वकीयाञ्जलिस्थाभिरद्भिरापोहिष्ठेति तृचेन पूरयेत्—

ओमापोहिष्ठामयोभुव—स्तानऊर्जेदधातन।

तदनन्तर आचार्य तूष्णीं ब्रह्मचारी को बिल्व वा पलाशादि का दण्ड देवे और वह ब्रह्मचारी (यो मे दण्ड०) मन्त्र पढ़के दण्ड को आचार्य के हाथ से लेवे। कोई आचार्य लोग सोमयाग की दीक्षा के समान यहां भी दण्ड ग्रहण का विधान कहते हैं। वहां सोमयाग में रीति यह है कि अध्वर्यु यजमान के मुख तक ऊंचा गूलर का दण्ड यजमान को देता और दीक्षित यजमान उस दण्ड को (उच्छ्रयस्व०) मन्त्र पढ़के ऊपर को ऊंचा उठाता है। यहां अध्वर्युस्थानी आचार्य और दीक्षित यजमान ब्रह्मचारी माना जायगा। तब दण्ड देने पश्चात् आचार्य अपनी अञ्जलि को जल से भरके ब्रह्मचारी की अञ्जलि को अपनी अञ्जलीके जल से (आपो हिष्ठा०) इत्यादि तीन मन्त्रों से भरे [आचार्य और ब्रह्म-

महेरणायचक्षषे ॥१॥ ओम्-योवःशिवतमोर-
स-स्तस्यभाजयतेहनः। उशतीरिवमातरः ॥२॥
ओम्-तस्माअरंगमामवो यस्यक्षयायजिन्वथ।
आपोजनयथाचनः ॥

[आचार्यवटुकौ तूष्णीं स्वस्वाञ्जली जलेन पूरयित्वा-ऽऽचार्यः स्वाञ्जलिना वटुकाञ्जलिमवक्षारयेत्तत्सवितुर्वृणी-महइति मन्त्रेण-

ओम्-तत्सवितुर्वृणीमहे वयंदेवस्य भोजनम्।
श्रेष्ठं सर्वधातमं तुरं भगस्य धीमहि ॥

इत्याश्वलायनगृह्ये विशेषः] तत आचार्यः-सूर्यमुदीक्षस्व--इति वाक्येन ब्रह्मचारिणं प्रेषयेत्-वटुश्च तच्चक्षुरिति मन्त्रं पठन् सूर्यमुदीक्षेत-

ओम्-तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्।
पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतथं शृ-
णुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः
स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥

चारी दोनों अपनी २ अञ्जलियों को विना मन्त्र पढ़े जल से भरके आचार्य अपनी अञ्जुलि के जल को (तत्सवितुर्वृणी०) मन्त्र से ब्रह्मचारी के अञ्जलिस्थ जल में गिरावे। यह आश्वलायनगृह्यसूत्रानुसार भेद है]

तदनन्तर (सूर्यमुदीक्षस्व) इस वाक्य से आचार्य ब्रह्मचारी से प्रैष कहे और ब्रह्मचारी (तच्चक्षुर्देव०) मन्त्र पढ़के सूर्य को देखे [आचार्य स्वयं (देव-सवित

[ओम्—देव सवितरेष ते ब्रह्मचारी तं गोपाय स मा मृत इति मन्त्रेण सूर्यावलोकनम्। मन्त्रश्चाचार्यपठनीय इत्याश्वलायने विशेषः] तत आचार्यो माणवकदक्षिणांसस्योपरि हस्तं नीत्वा ममव्रतेतइति मन्त्रेण माणवकस्य हृदयमालभेत—

ओम्—मम व्रते ते हृदयं दधामि मम चित्तमनुचित्तं ते अस्तु। मम वाचमेकमना जुषस्व बृहस्पतिष्ट्वा नियुनक्तु मह्यम् ॥

तत आचार्योऽस्य कुमारस्य दक्षिणं हस्तं साङ्गुष्ठं गृहीत्वा कोनामासीति वदेत्। [ओम्—देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां हस्तं गृह्णाम्यसौ॥ इति स्वपाणिना साङ्गुष्ठं वटुपाणिं गृह्णीयादित्याश्वलायनगृह्ये विशेषः] पृष्टो ब्रह्मचारी च—अमुकशर्माऽहं भोः। इत्येवं प्रतिवदेत्। पुनराचार्यः—कस्यब्रह्मचार्यसीति कुमारं पृच्छेत्। भवतइति कुमारेणोक्ते—आचार्यः—

ओम्—इन्द्रस्य ब्रह्मचार्यस्यग्निराचार्यस्तवाहमाचार्यस्तवासौ ॥

रेष०) इस मन्त्र को पढके शिष्य को सूर्यावलोकन करावे यह विशेषता है] तब आचार्य बालक के दहिने कन्धे के ऊपर से हाथ लेजाके (ममव्रते०) मन्त्र से हृदय का स्पर्श करे। फिर आचार्य इस बालक के दहिने हाथ को अङ्गुष्ठ सहित पकड़के कहे कि (कोनामासि) [तथा (देवस्य त्वा सवि०) इस मन्त्र को पढके अपने हाथ से अंगूठा सहित ब्रह्मचारी के हाथ को पकड़े यह आश्वलायनगृह्यसूत्र में विशेषता है] और आचार्य से पूछा हुआ ब्रह्मचारी (अमुक शर्माऽहम्भोः) ऐसा प्रत्युत्तर देवे। फिर ब्रह्मचारी से आचार्य कहे (कस्य ब्रह्मचार्यसि) उस पर (भवतः) ऐसा उत्तर बालक कहे तब आचार्य (इन्द्रस्य ब्रह्म०) इत्यादि

असावित्यस्य स्थाने सर्वत्र शर्माद्यन्तं ब्रह्मचारिनामोच्चारणं कार्यम् । अथाचार्यः प्रजापतयइत्यादिमन्त्रान् स्वयं पठन् कुमारं बद्धाञ्जलिं पूर्वादिदिङ्मुखमुपस्थानं कारयेत्-

ओं-प्रजापतये त्वा परिददामि ॥
ओं-देवाय त्वा सवित्रे परिददामि ॥
ओं-अद्भ्यस्त्वौषधीभ्यः परिददामि ॥
ओं-द्यावापृथिवीभ्यां त्वा परिददामि ॥
ओं-विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः परिददामि ॥
ओं-सर्वेभ्यस्त्वा भूतेभ्यः परिददाम्यरिष्ट्यै ।

प्रजापतयइति पूर्वस्यां देवायेति दक्षिणस्यामद्भ्य इति पश्चिमायां द्यावेत्युत्तरस्यां विश्वेभ्यइत्यधः सर्वेभ्यइति चोर्ध्वं मुखं कृत्वा माणवकउपस्थानं कुर्यात् । ततः कुमारोऽग्निं प्रदक्षिणीकृत्याचार्यस्योत्तरत उपविशेत् । ततः पुष्पचन्दनताम्बूलवासांस्यादाय-ओमद्यकर्त्तव्योपनयनहोमक-

---

मन्त्र पढे मन्त्र के अन्त में (आचार्यस्तवदेवशर्मन्!) इत्यादि प्रकार असौपद के स्थान में शर्माद्यन्त ब्रह्मचारी का नाम बोले ।

तदनन्तर आचार्य (प्रजापतये०) इत्यादि मन्त्रोंसे हाथ जोड़े हुए बालक को पूर्वादि दिशाओं में उपस्थान करावे मन्त्रोंको आचार्य स्वयंपढ़े (प्रजापतये त्वा०) मन्त्र को पढता हुआ पूर्वाभिमुख बालक को उपस्थान करावे (देवाय त्वा०) से दक्षिणाभिमुख (अद्भ्यस्त्वौ०) से पश्चिमाभिमुख (द्यावापृथि०) से उत्तराभिमुख (विश्वेभ्यस्त्वा०) से नीचे की दिशा को देखता हुआ और (सर्वेभ्यस्त्वा०) से ऊपर की दिशामें उपस्थान करावे । तदनन्तर कुमार बालक अग्नि की प्रदक्षिणा करके आचार्य से उत्तर में बैठ के पुष्प चन्दन ताम्बूल और वस्त्रों को हाथ में लेकर (ओमद्य०) इत्यादि वाक्य पढ़के ब्रह्मचारी ब्रह्माका वरण करे और

मंणि कृताकृतावेक्षणरूपब्रह्मकर्मकर्त्तुममुकगोत्रममुकशर्माणं ब्राह्मणमेभिः पुष्पचन्दनताम्बूलवासोभिर्ब्रह्मत्वेन त्वामहं वृणे। इति ब्रह्माणं वृणुयात्। ओम्–वृतोऽस्मीति प्रतिवचनम्। ततोऽग्नेर्दक्षिणतः शुद्धमासनं निधाय तदुपरि प्रागग्रान्कुशानास्तीर्य, ब्रह्माणमग्निप्रदक्षिणं कारयित्वाऽस्मिन् कर्मणि त्वं मे ब्रह्मा भवेत्यभिधाय भवानीति तेनोक्ते तदुपरि ब्रह्माणमुदङ्मुखमुपवेशयेत्। ततः प्रणीतापात्रं पुरतः कृत्वा वारिणा परिपूर्य कुशैराच्छाद्य ब्रह्मणो मुखमवलोक्याग्नेरुत्तरतः कुशोपरि निदध्यात्। ततः परिस्तरणम्–बर्हिषश्चतुर्थभागमादायाग्नेयादीशानान्तं, ब्रह्मणोऽग्निपर्यन्तम्। नैर्ऋत्याद्वायव्यन्तमग्नितः प्रणीतापर्यन्तम्। ततोऽग्नेरुत्तरतः पश्चिमदिशि पवित्रच्छेदनार्थं कुशत्रयं पवित्रकरणार्थं साग्रमनन्तर्गर्भं कुशपत्रद्वयम्। प्रोक्षणीपात्रमाज्यस्थाली संमार्जनकुशाः। उपयमनकुशाः।

पुष्पादि ब्रह्मा के हाथ में देवे। ब्रह्मा पुष्पादि को लेकर (वृतोऽस्मि) कहे। तब अग्निसे दक्षिण में शुद्ध आसन चौकी आदि बिछाकर उसपर पूर्व को जिन का अग्रभाग हो ऐसे कुश बिछाकर ब्रह्मा को अग्नि की प्रदक्षिणा कराके (अस्मिन् कर्मणि त्वं मे ब्रह्मा भव) इस कर्म में तुम मेरे ब्रह्मा हो ऐसा कहकर ब्रह्मा के (भवानि) कहने पर उस आसन पर ब्रह्मा को उत्तराभिमुख बैठाकर प्रणीतापात्र को सामने रखके जलमें भरके कुशोंसे आच्छादन कर ब्रह्मा का मुख अवलोकन करके अग्नि से उत्तर कुशों पर प्रणीतापात्र को प्रागग्र रक्खे। तदनन्तर चार मुट्ठी कुश लेकर अग्निके सब ओर परिस्तरण करे–एक चौथाई कुश अग्निकोण से ईशान दिशा तक, द्वितीय भाग ब्रह्मा के आसन से अग्निपर्यन्त तृतीय भाग नैर्ऋत्य कोण से वायु कोण पर्यन्त चौथा अग्नि से प्रणीता पर्यन्त बिछावे। तदनन्तर अग्नि से उत्तर में प्राक्संस्थ पात्रासादन करे। पवित्र छेदनार्थं तीन कुश तथा पवित्रकरणार्थं अग्रभाग सहित जिन के भीतर अन्य कुश न हों ऐसे दो कुश, प्रोक्षणीपात्र आज्यस्थाली, संमार्जनकुश, उपयमनकुश, डाक

समिधस्त्रिस्रः। स्रुव आज्यम्। पूर्णपात्रम्, पवित्रच्छेदनकुशानां पूर्वपूर्वदिशि क्रमेणासादनीयम्। इति पात्रासादनम्। ततः पवित्रच्छेदनकुशैः पवित्रे छित्वा सपवित्रकरेण प्रणीतोदकं त्रिः प्रोक्षणीपात्रे प्रक्षिप्यानामिकाङ्गुष्ठाभ्यां गृहीतपवित्राभ्यां तज्जलं किञ्चित् त्रिरुत्क्षिप्य प्रणीतोदकेन प्रोक्षणीपात्रं त्रिरभिषिच्य प्रोक्षणीजलेनासादितवस्तुसेचनं कृत्वाऽग्निप्रणीतापात्रयोर्मध्ये प्रोक्षणीपात्रं निदध्यात्। आज्यस्थाल्यामाज्यनिर्वापोऽधिश्रयणं ततः कुशान् प्रज्वाल्याज्योपरि प्रदक्षिणं भ्रामयित्वा वन्हौ तत्प्रक्षिप्य स्रुवं त्रिः प्रतप्य सम्मार्जनकुशानामग्रैरन्तरतो मूलैर्बाह्यतः स्रुवं संमृज्य प्रणीतोदकेनाभ्युक्ष्य पुनस्त्रिः प्रतप्याग्नेर्दक्षिणतो नि-

तीन समिधा, स्रुव, आज्य, पूर्णपात्र, पवित्रछेदन कुशो से पूर्वपूर्व दिशामें क्रम से सब का स्थापन उत्तर को अग्रभाग कर २ करे। तदनन्तर पवित्रच्छेदनार्थ तीन कुशों से प्रादेशमात्र दो कुशो का छेदन करके पवित्र सहित दहिने हाथ से प्रणीता के जल को तीन वार प्रोक्षणीपात्र में डाल कर अनामिका और अङ्गुष्ठ से पकड़े हुए पवित्रो से उस प्रोक्षणीस्थ जल का उत्पवन [अर्थात् पवित्रो द्वारा प्रोक्षणीपात्र के जलको ऊपर को उछालना] कर और प्रणीता के जल से प्रोक्षणीस्थ जल का पवित्रो द्वारा तीन वार अभिषेचन करके प्रोक्षणीपात्र के जल से स्थापित किये आज्यस्थाली आदि सब पदार्थों का सेचन करके अग्नि और प्रणीतापात्र के बीच में प्रोक्षणीपात्र को रख देवे। तब आज्यस्थाली में घृतपात्र से घृत गिरा के अग्नि पर तपने को रक्खे तदनन्तर सूखे कुश जला कर घी के ऊपर प्रदक्षिण भ्रमण कराके अग्नि में जलते कुश फेंक कर स्रुवा को तीन वार अग्नि में तपा के समार्जन कुशो के अग्रभाग से भीतर की और कुशो के मूल भाग से बाहर की ओर स्रुवा को झाड़ पोंछ शुद्ध कर तथा प्रणीता के जल से सेचन करके और फिर तीन वार तपाके अग्निसे दक्षिण की ओर स्रुवाको धर देवे। तत्पश्चात् तपते हुए घी को अग्नि से उतार के तीनवार प्रोक्षणी के तुल्य

दध्यात् । ततश्चाज्यमग्नेरवतार्य त्रिः प्रोक्षणीवदुत्पूयावेक्ष्य सत्यपद्रव्ये तन्निरस्य पुनः प्रोक्षण्युत्पवनम् । ततउत्थायोपयमनकुशान् वामहस्ते कृत्वा प्रजापतिं मनसा ध्यात्वा तूष्णीं घृताक्तास्तिस्रः समिधोऽग्नौ प्रक्षिपेत। पुनरुपविश्य सपवित्रप्रोक्षण्युदकेन प्रदक्षिणक्रमेणाग्निमुदक्संस्थं पर्युक्ष्य प्रणीतापात्रे पवित्रे निधाय प्रोक्षणीपात्रं विसर्जयेत् । ततः पातितदक्षिणजानुर्ब्रह्मणान्वारब्धः समिद्धतमेऽग्नौ स्रुवेणाज्याहुतीर्जुहुयात् । तत्र तत्तदाहुत्यनन्तरं स्रुवावस्थितहुतशेषस्य प्रोक्षणीपात्रे प्रक्षेपः—

ओं प्रजापतये स्वाहा । इदं प्रजापतये नमम । इति मनसा । ओम्—इन्द्राय स्वाहा । इदमिन्द्राय नमम । इत्याघारौ । ओमग्नये

पवित्रों से घी का उत्पवन करके देखे यदि घृत में कुछ निकृष्ट वस्तु हो तो निकाल कर फेंक देवे और फिर तीन बार प्रोक्षणीपात्र का उत्पवन करे। तदनन्तर उठकर उपयमनकुशों को वाम हाथ में लेके प्रजापति का मन से ध्यान करके घृत में डुबोई तीन समिधाओं को तूष्णीं बिना मन्त्र पढे एक २ कर अग्नि में चढावे। फिर बैठ कर पवित्रसहित प्रोक्षणी के जल को प्रदक्षिणक्रम से ईशान कोण से लेकर उत्तर दिशा तक अग्नि के सब ओर सेचन करे अर्थात् प्रोक्षणीपात्र का सब जल पर्युक्षण में गिरा देवे। प्रणीतापात्र में दोनो पवित्र रख के प्रोक्षणीपात्र का विसर्जन करे। तदनन्तर घोंटू को भूमि में टेक कर ब्रह्मा से अन्वारब्ध हुआ ब्रह्मचारी प्रज्वलित अग्नि में स्रुवा से आज्याहुतियों का होम करे। वहां २ सब २ आहुति देने पश्चात् स्रुवा में जो घृतबिन्दु बचें उनको प्रोक्षणीपात्र में डालता जावे। प्रजापति का मनसे ध्यान कर पूर्वाघार की तूष्णीं आहुति देवे। त्याग सब का ब्रह्मचारी स्वयं बोलता जाय। आघार की दो आज्य भाग की दो और महाव्याहृतियों की तीन सर्वप्राय-

स्वाहा । इदमग्नये नमम । ओम्–सोमाय स्वाहा । इदं सोमाय नमम । इत्याज्यभागौ । ओं भूः स्वाहा । इदमग्नये नमम । ओं भुवः स्वाहा । इदं वायवे नमम । ओं स्वः स्वाहा । इदं सूर्याय नमम । एता महाव्याहृतयः ।

ओं त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेडोऽअवयासिसीष्ठाः । यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषाथंसि प्रमुमुग्ध्यस्मत्स्वाहा ॥ १ ॥ इदमग्नीवरुणाभ्यां नमम । ओं स त्वन्नो अग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठो अस्या उषसो व्युष्टौ । अवयक्ष्व नो वरुणथं रराणो वीहि मृडीकथं सुहवो नएधि स्वाहा ॥ २ ॥ इदमग्नीवरुणाभ्यां न मम । ओम्–अयाश्चाग्नेऽस्यनभिशस्तिपाश्च सत्यमित्त्वमयाअसि । अया नो यज्ञं वहास्यया नो धेहि भेषजथंस्वाहा ॥ ३ ॥ इदमग्नये नमम ॥ ओम्–ये ते शतं वरुण ये सहस्रं

श्चित्त की पांच तथा प्राजापत्य और स्विष्टकृत् दो सब चौदह आहुति स्वागों सहित देके संस्रव प्राशन कर हाथ धो आचमन कर के ब्रह्मा को दक्षिणा देवे

यज्ञियाः पाशा वितता महान्तः । तेभिर्नो अद्य सवितोत विष्णुर्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्काः स्वाहा ॥ ४ ॥ इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्यो मरुद्भ्यः स्वर्केभ्यश्च न मम ॥ ओम्—उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं विमध्यमं श्रथाय । अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम स्वाहा ॥५॥ इदं वरुणाय न मम । एताः सर्वप्रायश्चित्ताहुतयः । ओम्—प्रजापतये स्वाहा । इदं प्रजापतये न मम । इति मनसा प्राजापत्यम् । ओम्—अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा । इदमग्नये स्विष्टकृते न मम ।

इति स्विष्टकृद्धोमः । ततः संस्रवप्राशनमाचमनं च कृत्वा ब्रह्मणे दक्षिणां दद्यात् । ओमद्यैतस्मिन्नुपनयनहोमकर्मणि कृताकृतावेक्षणरूपब्रह्मकर्मप्रतिष्ठार्थमिदं पूर्णपात्रं प्रजापतिदैवतममुकगोत्रायामुकशर्मणे ब्रह्मणे ब्राह्मणाय दक्षिणां तुभ्यमहं संप्रददे इति दक्षिणा दद्यात् । ओंस्वस्तीति प्रतिवचनम् । ततः—

इस में (ओमद्यैतस्मिन्०) इत्यादि संकल्प करे । और ब्रह्मा स्वस्ति कह कर दक्षिणा लेवे । तदनन्तर पवित्रों द्वारा प्रणीता का जल लेकर (ओंसुमित्रि०)

ओं सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु ।

इति पवित्राभ्यां प्रणीताजलमानीय तेन शिरः संमृज्य-

ओं दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥

इत्यैशान्यां प्रणीतान्युब्जीकरणम् । ततः स्तरणक्रमेण बर्हिरुत्थाप्य घृतेनाभिघार्य हस्तेनैव जुहुयात् ।

ओं देवा गातुविदो गातुं वित्त्वा गातुमित । मनसस्पतइमं देवयज्ञꣳ स्वाहा वातेधाः स्वाहा ॥ इदं वाताय नमम ।

इति बर्हिर्होमः । पञ्चभूसंस्कारा ब्रह्मवरणादिबर्हिर्होमान्तं च सर्वं कर्म सामान्यतया सर्वस्मार्त्तहोमेषु कर्त्तव्यम् ॥ तत आचार्यएव ब्रह्मचारिणं संशास्यात् । तद्यथा—ब्रह्मचार्यसि—इत्याचार्यः । भवानीति ब्रह्मचारी । अपोऽशान

मन्त्र पढ के अपने शिर पर जलसेचन करके (ओं दुर्मित्रिया०) मन्त्र से प्रणीता के शेष जल को ईशान दिशा में लौट देवे और पवित्रों को बिछाये हुए कुशों में मिला देवे तब जिस क्रम से कुश बिछाये थे उसी क्रम से पवित्रो सहित उठा कर कुशो में घी लगा के हाथ से ही कुशों का होम (ओं देवा गातुवि०) मन्त्र पढ के त्याग के साथ कर देवे । पंचभूसंस्कार और ब्रह्मा के वरण से लेकर यहां तक कहा बर्हिर्होम पर्यन्त सब कर्म सामान्य कर सब स्मार्त्त होमो में करना चाहिये ॥

तदनन्तर आचार्य ही ब्रह्मचारी को शिक्षा करे—आचार्य—तुम ब्रह्मचारी हो । अब से तुम ब्रह्म नाम वेदोक्त कर्म करने के अधिकारी हुए हो । बालक—मैं ब्रह्मचारी होऊं । आचार्य—तुम भोजन से पहिले सदा एकवार आचमन किया करो । बालक-आचमन करूंगा । आचार्य—तुम स्नान सन्ध्योपासन, वेदाध्ययन भि-

इत्या० । अश्नानि-इति ब्र०। कर्म कुरु-इत्या०। करवाणि इति ब्र०। मा दिवा सुषुप्था-इत्याचार्यः। नस्वपानीति ब्र०। वाचं यच्छ-इत्या०। यच्छानि-इति ब्र०। समिधमाधेहि-इत्या०। आदधानि-इति ब्र०। अपोऽशान-इत्याचार्यः। अशानि-इति ब्रह्मचारी वदेत्। एवं शासितायाग्नेरुत्तरतः प्रत्यङ्मुखोपविष्टायाचार्यपादोपसंग्रहणपूर्वकमुपसन्नायाचार्यं समीक्षमाणायाचार्येणापि समीक्षितायास्मै ब्रह्मचारिणे निवारितशङ्खतूर्यादिशब्देऽविघ्ने आचार्यः सावित्रीमनुब्रूयात्। अग्नेर्दक्षिणतस्तिष्ठत आसीनाय वा ब्रूयादिति केचित्। प्रणवव्याहृतिपूर्वकं प्रथममेकैकं पादम्। तथा द्वितीयमर्द्धर्चशस्तथैव तृतीयं सर्वां च शिष्येण सह पठन्नुपदिशेत्। यथा-

ओम्-भूर्भुवःस्वः-तत्सवितुर्वरेण्यम्।

आचमनादि अपना शास्त्रोक्त कर्म नियम से करो। बालक-मैं कर्म करूंगा। आचार्य तुम दिन में मत सोया करो। बालक-नहीं सोऊंगा। आचार्य धर्मशास्त्र में कहे समय तुम मौन रहा करो। बालक-मौन धारण करूंगा। आचार्य-आगे लिखे अनुसार नित्य समिदाधान किया करो। बालक-मैं नित्य समिदाधान करूंगा। आचार्य-भोजन के पश्चात् नित्य आचमन किया करो। बालक-भोजन किये पश्चात् नित्य आचमन किया करूंगा। इस प्रकार आचार्य शिक्षा कर चुके तब ब्रह्मचारी बायें हाथ से आचार्य के बायें पग का और दहिने हाथ से दहिने पग का स्पर्श करके अग्नि से उत्तर पश्चिमाभिमुख आचार्य के निकट ही बैठे आचार्य अग्नि से उत्तर में पूर्वाभिमुख आसन पर बैठा हो आचार्य की ओर बालक देखता हो और बालक का मुख आचार्य देखता हो ऐसी दशा में शङ्ख बाजे आदि के शब्द न होते हों ऐसे समय में आचार्य ब्रह्मचारी को सावित्री मन्त्र का उपदेश करे। अग्नि से दक्षिण में खड़े हुए ब्रह्मचारी को सावित्री मन्त्र का उपदेश करे यह किन्हीं आचार्यों का मत है। प्रथमावृत्ति में प्रणव और व्याहृतियों सहित एक २ पाद का उपदेश करे (ओंभूर्भुव स्वः-तत्सवि०) (ओं

ओम्-भूर्भुवःस्वः-भर्गो देवस्य धीमहि ।
ओम्-भूर्भुवःस्वः-धियोयोनःप्रचोदयात् ॥

इयमेकावृत्तिः

ओम्-भूर्भुवःस्वः-तत्सवितुर्वरेण्यम्भर्गोदेवस्यधीमहि । ओम्-भूर्भुवःस्वः-धियोयोनःप्रचोदयात् ॥ इति द्वितीयावृत्तिः

ओम्-भूर्भुवःस्वः-तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्यधीमहि । धियोयोनःप्रचोदयात् ॥

इति तृतीयावृत्तिः । संवत्सरे वा षण्मासे वा चतुर्विंशत्यहे वा द्वादशाहे वा षडहे वा त्र्यहे वा काले क्षत्रियवैश्ययोर्ब्रह्मचारिणोराचार्यः सावित्रीमनुब्रूयात् । अधिकारितारतम्यपरीक्षार्थाः कालविकल्पाः । अत्रावसरे ब्रह्मचारिणःसमिदाधानम् । तद्यथा-आचार्यदक्षिणदिश्यग्नितः पश्चिमोपविष्टो ब्रह्मचारी दक्षिणहस्तेन शुष्कगोमयकाष्ठं प्रक्षिप्याग्नेसुश्रवइति पञ्चभिर्मन्त्रैरग्निं प्रदीपयेत् ।

भूर्भुवःस्वः-भर्गो०) (ओं-भूर्भुवःस्वः-धियो०) द्वितीयावृत्ति में ऊपर लिखे अनुसार प्रथम आधी ऋचा के साथ प्रणवव्याहृति लगा के कहलावे द्वितीय बार ऐसे ही तृतीय पाद का उच्चारण करावे और तृतीयावृत्ति में प्रणव व्याहृतियों सहित पूरे गायत्री मन्त्र का उच्चारण आचार्य करावे शिष्य साथ २ कहता जावे। एक वर्ष में वा छः मास में वा चौबीस दिन में वा बारह दिन में वा छः दिन में अथवा तीन दिन में क्षत्रिय वैश्य ब्रह्मचारियों को आचार्य सावित्री मन्त्र का उपदेश करे । अधिकारी की न्यूनाधिकता परीक्षा द्वारा जानने के लिये समय के कई विकल्प किये हैं। इसी अवसर में ब्रह्मचारी समिदाधान करे । जैसे-आचार्य से दक्षिण दिशा में और अग्नि से पश्चिम में बैठा ब्रह्मचारी दहिने हाथ से सूखे गोबर

ओम्—अग्ने सुश्रवः सुश्रवसं मा कुरु ॥ १ ॥
ओम्—यथा त्वमग्ने सुश्रवः सुश्रवा असि ॥२॥
ओम्—एवं माथं सुश्रवः सौश्रवसं कुरु ॥३॥
ओम्—यथा त्वमग्ने देवानां यज्ञस्य निधिपा असि ॥४॥ ओम्—एवमहं मनुष्यणां वेदस्य निधिपो भूयासम् ॥ ५ ॥

हस्तद्वयेन वा संधुक्षणं कुर्यात्। ततो दक्षिणहस्तेन प्रदक्षिणमग्निमद्भिः पर्युक्ष्योत्थाय तिष्ठन्स्वप्रादेशमिता घृताक्तास्तिस्रः पलाशसमिध आदाय तास्वेकैकामग्नये समिधमित्येपातइति वोभाभ्यां वाऽऽवृत्त्या तिस्रःसमिधआदध्यात् ॥

ओम्—अग्नये समिधमाहार्षं बृहते जातवेदसे यथा त्वमग्ने समिधा समिध्यस एवमहमायुषा मेधया वर्चसा प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन समिन्धे जीवपुत्रो ममाचार्यो मेधाव्यहमसान्यनिराकरिष्णुर्यशस्वी तेज-

---

के आगे काष्ठे अग्नि में डालता हुआ (अग्नेसुश्रव०) इत्यादि पांच मन्त्रों से अग्नि को प्रदीप्त करे अथवा अग्नि में काष्ठ वा समिधा न छोड़ता हुआ दोनों हाथ से ही मन्त्र पढ़ता हुआ अग्नि को धोंके। तदनन्तर दहिने हाथ से किसी छोटे पात्र में वा हाथ में जल लेकर ईशानकोण से उत्तर पर्यन्त प्रदक्षिण क्रम से अग्नि के सब ओर जल सेचन करे फिर उठ कर खड़ा हुआ ब्रह्मचारी अपने प्रादेशमात्र घृत में डुबोई ढाक की तीन समिधाओं को हाथ में लेकर उन में से एक २ को (अग्नये समिध०) मन्त्र से वा (एषाते०) मन्त्र से वा इन दोनों

स्वी ब्रह्मवर्चस्यन्नादो भूयासम् । ओम्-एषाते अग्नेसमित्तयावर्द्धस्वचाचप्यायस्व । वर्द्धिषीमहिच वयमा च प्यासिषीमहिस्वाहा ।

तत उपविश्य पूर्ववदग्ने सुश्रवइत्यादि पञ्चमन्त्रैरग्निं संदीप्य प्रदक्षिणं पर्युक्ष्य तूष्णीं पाणी प्रतप्य प्रतप्य तनूपाइति प्रतिमन्त्रं मुखं विमृज्यात् ।

ओम्-तनूपाअग्नेऽसि तन्वं मे पाहि ॥१॥ ओमायुर्दाअग्नेऽस्यायुर्मे देहि ॥२॥ ओम्-वर्चोदा अग्नेऽसि वर्चो मे देहि ॥३॥ ओम्-अग्ने यन्मे तन्वा ऊनन्तन्म आपृण ॥ ४ ॥ ओम्-मेधां मे देवः सविता आदधातु ॥५॥ ओम्-मेधां मे देवी सरस्वती आदधातु ॥६॥ ओम्-मेधां मेऽश्विनौ देवावाधत्तां पुष्करस्रजौ ॥ ७ ॥

ततोऽङ्गानि च म इति शिरः प्रभृति पादान्तं दक्षिणपाणिना सर्वाङ्गमालभेत-

---

मन्त्रों से तीन बार करके तीनों समिधा अग्नि में चढ़ावे तीनों बार मन्त्र भी पढ़े । तदनन्तर बैठ कर पहिले कहे अनुसार (अग्ने सुश्रवः) इत्यादि पांच मन्त्रों से अग्नि को प्रज्वलित प्रदीप्त कर और पर्युक्षण [अग्नि के सब ओर पूर्ववत् जलसेचन] करके विना मन्त्र पढ़े दोनों हाथ तपा २ कर (तनूपा०) इत्यादि प्रत्येक मन्त्र से मुख का स्पर्श करे । तदनन्तर (अङ्गानि च०) मन्त्र पढ़ के शिर

मयस्तिस्रः षड् द्वादशापरिमिता वा स्त्रियो ब्रह्मचारी भिक्षां याचेत। केचिन्मातरं तदभावे स्वसारं तस्या अप्यभावे मातुर्निजां भगिनीं प्रथमं भिक्षां याचेतेति मन्यन्ते। भिक्षामानीयाचार्याय निवेदयेत्। ततो भैक्षं भुङ्क्ष्वेति गुरुणाऽनुज्ञातो भोजनं कुर्यात्। इत आरभ्य सूर्यास्तमयावधि वाग्यतस्तिष्ठेदिति विकल्पितम्। ततो ब्रह्मचारी सायंसन्ध्यामुपास्य–अग्नेसुश्रवइत्यादि मन्त्रैः पाणिना परिसमूहनादारभ्याभिवादनपर्यन्तं सर्वं कृत्यं कृत्वा वाचं विसृजेत। अथोपनयनकालादारभ्य समावर्त्तनावधि ब्रह्मचारिणः कृत्यम्–भूमौ शयनम्। अक्षारालवणाशनम्। दण्डधारण-

---

नकार [इनकार] न करें ऐसी तीन, छ बारह वा अनियत संख्यावाली स्त्रियों से ब्रह्मचारी भिक्षा मांगे। किन्हीं आचार्यों का मत है कि प्रथम माता से भिक्षा मांगे माता न हो तो अपनी सगी बहनसे और भगिनी भी न हो तो माता की सगी बहन मातृष्वसा (मौसी) से भिक्षा मांगे। भिक्षा को लाकर आचार्य के सामने धरे [भिक्षा कहने से यहां पकाया हुआ अन्न जानो। चाहे रोटी दाल, भात पूरी आदि हो वा फल आदि हो किन्तु दानेरूप कच्चा अन्न, आटा वा रुपया पैसादि का नाम यहां भिक्षा नहीं है] जब आचार्य आज्ञा करें कि (भैक्षं भुङ्क्ष्व) तब ब्रह्मचारी भोजन करे इस समय से लेकर सूर्यास्त होने समय तक ब्रह्मचारी मौन होकर खड़ा रहे किन्तु बैठे लेटे नहीं। चाहे और शक्ति भी हो तो ऐसा अवश्य करे। खड़ा रहना असम्भव हो तो न करे। तदनन्तर ब्रह्मचारी सायं काल की सन्ध्या करके (अग्ने! सुश्रव०) इत्यादि मन्त्रों को पढ़ता हुआ दोनों हाथ से अग्नि को ढाँकने से लेकर आचार्य तथा वृद्धादि को अभिवादन करने पर्यन्त कृत्य करके वाणी का विसर्जन करे अर्थात् बोलने लगे। अब उपनयन संस्कार के समय से लेकर समावर्त्तन पर्यन्त ब्रह्मचर्याश्रम के विशेष नियम कहते हैं। भूमि पर सोवे किसी खार तथा किसी लवण को न खावे, नित्यदण्ड का धारण अग्निका परिचरण जैसा पूर्व ढाँकने से लेकर अभिवादन पर्यन्त कहचुके हैं। इसी

मग्निपरिचरिणं गुरुशुश्रूषा भिक्षाचर्या सायंप्रातर्भोजनार्थं भोजनसांनिध्ये वारद्वयं वाऽनिन्द्यै कर्मनिष्ठवेदाऽध्यायिब्राह्मणगृहे गुर्वाज्ञया भैक्षं याचित्वा भोजनविधिना भुञ्जीत॥

मधु क्षौद्रं मांसं च कदापि नाश्नीयात् । नद्यादिजलाशये प्रविश्य स्नानं नाचरेत् । किन्तूद्धृतोदकेन स्नायात् । खट्वादावुपर्यासनं वर्जयेत् । स्त्रीगमनम् । स्त्रीणां मध्येऽवस्थानं च वर्जयेत् । तथा च मनुः–

वर्जयेन्मधुमांसंच गन्धंमाल्यंरसान्स्त्रियः ।
शुक्तानियानिसर्वाणि प्राणिनांचैवहिंसनम् ॥
अभ्यङ्गमञ्जनंचाक्ष्णो–रुपानच्छत्रधारणम् ।
कामंक्रोधंचलोभंच नर्त्तनंगीतवादनम् ॥
द्यूतंचजनवादंच परिवादंतथाऽनृतम् ।
स्त्रीणांचप्रेक्षणालम्भ–मुपघातंपरस्यच ॥

विधान से नित्य सायंप्रात काल समिदाधान करता रहे,गुरु की सेवा, शुश्रूषा करना, धर्म वा नियम विषय में आचार्य की जो आज्ञा हो अवश्य पालन करे। सायंप्रात काल भोजनार्थ अनिन्दित, धर्म कर्म निष्ठ, वेद का पठन पाठन करने वाले ब्राह्मणों के घर से भिक्षा मांगकर भोजनविधि से नित्य सायंप्रात काल भोजन किया करे। ब्रह्मचारी शहत और मांस को कभी न खावे। नदी आदि के जल में घुसकर स्नान न करे किन्तु जलाशय से लोटा वा घड़ा भर २ बाहर स्नान करे। खटिया आदि ऊंचे पर न सोवे। स्त्री गमन का सर्वथा ही परित्याग रक्खे। स्त्रियों के बीच वा पास में निवास न करे। मनुजी ने कहा है कि—शहत, मांस, इतर आदि सुगन्ध, पुष्पादिमाला, लवणादिरस, स्त्रियों का सङ्ग, बासी धरा अन्नादि, प्राणियों वा जीव जन्तुओं का मारना, शरीर में तैल मर्दन, आंखों में अञ्जन वा सुरमा लगाना, जूता तथा छाता का धारण करना, काम, क्रोध, लोभ, नाचना, गाना, बजाना, जुआ चौपड़ आदि खेलना, किसी की निन्दा स्तुति करना, बहुत बकना, मिथ्या भाषण, स्त्रियों का दर्शन करना, स्पर्श करना, किसी

एकःशयीतसर्वत्र-नरेतःस्कन्दयेत्क्वचित् ।
कामाद्धिस्कन्दयन्रेतो हिनस्तिव्रतमात्मनः ॥
स्मृत्यन्तरेतु–मधुमांसाञ्जनोच्छिष्ट–शुक्तस्त्रीप्राणिहिंसनम्
भास्करालोकनाश्लील–परिवादादिवर्जयेत् ॥

अत्रादिशब्देन पर्युषिततांबूलदन्तधावनावसक्थिका-दिवास्वापछत्रपादुकागन्धमाल्योद्वर्त्तनानुलेपनजलक्रीडाद्यूतनृत्यगीतवाद्यालापादीन्यन्यान्यपि वर्जनीयानि । तथा–

कार्याभिक्षासदाधार्यं कौपीनंकटिसूत्रकम् ।
कौपीनमहतंधार्य्यं दण्डंवावस्त्रपार्श्वयुक् ॥
यज्ञोपवीतमजिनं मौञ्जीदण्डंचधारयेत् ।
नष्टेभ्रष्टेनवंमन्त्राद्द धृत्वाभ्रष्टंजलेक्षिपेत् ॥

एवमष्टाचत्वारिंशद्वार्षिकं वेदब्रह्मचर्यं षट्त्रिंशद्वर्षं यावद्ग्रहणं वा कुर्यात् ॥

को पीटना इन सब को छोडदे ये काम कभी न करे । सदा सर्वत्र अकेला सोवे कभी वीर्यपात न होने दे । यदि कामवेग से वीर्यपात करता है तो अपने व्रतको नष्ट करदेता है । स्मृत्यन्तरो में इतना अधिक लिखा है कि उच्छिष्ट भोजन, सूर्यको देखना, विषयो की चर्चा, दातौन करना, पान खाना, दिन में सोना, खड़ाम् पहरना स्नान के पश्चात् चन्दनादि सुगन्ध शरीर में लगाना, जलक्रीडा, भजनादि को तान भर २ गाना छोड़देवे । तथा सदा भिक्षा माग कर खावे कटिवस्त्र सहित कौपीन को सदा धारण करे, कौपीन और दण्ड फटे टूटे नहो ये यज्ञोपवीतादि चिन्ह टूट फूट जावें तो उन को जल में डालकर मंत्र पूर्वक नये धारण करे । इस प्रकार वेदाध्ययन के लिये अड़तालीश, छत्तीश अठारह वा नौ वर्ष का ब्रह्मचर्य नियम से धारण करे । अथवा एक दो तीन वा चारो वेद छओं अङ्गों सहित तथा ब्राह्मण ग्रन्थो सहित जितने दिन में पूरे पढ सके उतने दिन ब्रह्मचर्य के नियमों का धारण करे ॥

इत्युपनयनसंस्कार समाप्त ॥

अथवेदारम्भः।

देशकालौ स्मृत्वाऽऽऋग्वेदव्रतादेशं यजुर्वेदव्रतादेशं वा करिष्यइति यथावेदं संकल्प्य पञ्चभूसंस्कारपूर्वकं लौकिकाग्निं स्थापयेत्। तत्र ब्रह्मचारिणमाहूयाग्नेः पश्चात् स्वस्योत्तरत उपवेश्य ब्रह्मोपवेशनाद्याज्यभागान्तं कर्म कृत्वा यदि ऋग्वेदमारभेत तदा—पृथिव्यै स्वाहा। इदं पृथिव्यै न मम। अग्नये स्वाहा। इदमग्नये न मम। इति द्वे आज्याहुती हुत्वा। ओम्-ब्रह्मणे स्वाहा। इदं ब्रह्मणे न मम। ओं छन्दोभ्यः स्वाहा। इदं छन्दोभ्यो न मम। ओं प्रजापतये स्वाहा। इदं प्रजापतये न मम। ओं देवेभ्यः स्वाहा। इदं देवेभ्यो न मम। ओम्-ऋषिभ्यः स्वाहा। इदमृषिभ्यो न मम। ओं श्रद्धायै स्वाहा। इदं श्रद्धायै न मम। ओं मेधायै स्वाहा। इदं मेधायै न मम। ओं सदसस्पतये स्वाहा। इदं सदसस्पतये न मम। ओं अनुमतये स्वाहा। इदमनुमतये न मम। इति नवाहुतिहोमं कृत्वा शेषं समापयेत्। यदि यजुर्वेदारम्भस्तदाऽऽज्यभागानन्तरम्—ओं

भा०—अब वेदारम्भ संस्कार लिखते हैं। यज्ञोपवीत के ही दिन वा उस से तीन दिन पश्चात् आचार्य देश काल के स्मरणरूप संकल्प के साथ ऋग्वेद वा यजुर्वेद के अध्ययनव्रत की आज्ञा मैं आज शिष्यको करूंगा। ऐसा संकल्प कर के पञ्चभूसंस्कार (पूर्व यज्ञोपवीत में कहे अनुसार) कर के लौकिक अग्नि को सन्मुख स्थापित करे। तब ब्रह्मचारी को बुलाके अग्नि से पश्चिम और अपनेसे उत्तर में पूर्वाभिमुख बैठाके ६१–६५ पृष्ठमें लिखे अनुसार ब्रह्मवरणादि आज्यभागान्त कर्म करके यदि ऋग्वेद का आरम्भ करना हो तो पृथिवी और अग्नि के लिये दो आहुति देके ब्रह्मादि के नाम से नव आहुति देवे। यदि यजुर्वेद का आरम्भ करना हो

अन्तरिक्षाय स्वाहा। इदमन्तरिक्षाय न मम। ओं वायवे स्वाहा। इदं वायवे न मम। इत्याहुतिद्वयानन्तरं ब्रह्मणे स्वाहेत्यादिनवाहुतयः। यदि सामवेदारम्भस्तदाज्यभागान्ते–ओं दिवे स्वाहा। इदं दिवे न मम। ओं सूर्याय स्वाहा। इदं सूर्याय न मम। इति हुत्वा ब्रह्मणा इत्यादिपूर्ववत्। यद्यथर्ववेदारम्भस्तदाऽऽज्यभागान्ते-ओं दिग्भ्यः स्वाहा। इदं दिग्भ्यो न मम। ओं चन्द्रमसे स्वाहा। इदं चन्द्रमसे न मम। इत्याहुतिद्वयानन्तरं ब्रह्मणइत्यादिपूर्ववत्। यद्येकदा सर्ववेदारम्भस्तदाज्यभागानन्तरं क्रमेण प्रतिवेदमुक्ताहुतिद्वयं हुत्वा ब्रह्मणे छन्दोभ्यइत्याहुतिद्वयं च हुत्वा प्रजापतयइत्यादिसप्तमन्त्रैर्जुहुयात्। अनन्तरं महाव्याहृत्यादिस्विष्टकृदन्ता दशाहुतीर्जुहुयात्। यथा–

ओं भूः स्वाहा। इदमग्नये नमम। ओं भुवः स्वाहा। इदं वायवे नमम। ओं स्वः स्वाहा। इदं सूर्याय नमम। एता महाव्याहृतयः।

तो अन्तरिक्ष और वायु के लिये दो आहुति देके ब्रह्मादि को नव आहुति देवे। यदि सामवेद का आरम्भ करना हो तो आज्यभागों के अन्त में दिव् और सूर्य के लिये दो आहुति दे के ब्रह्मादि को नव आहुति देवे। यदि अथर्ववेद का आरम्भ करना हो तो आज्यभागों के अन्त में दिशा और चन्द्रमा के नाम से दो आहुति देकर सब ब्रह्मादि के नाम से नव आहुति देवे। यदि साथ ही सब वेदों के पढ़ने का आरम्भ करना अभीष्ट हो तो आज्यभागों के पश्चात् क्रम से प्रत्येक ऋगादि वेद की दो २ आहुति देकर और प्रत्येक वेद की दो आहुतियों के अन्त में ब्रह्म और छन्द की दो आहुति देकर प्रजापति आदि की सात आहुति देवे। इस के पश्चात् महाव्याहृतियों से लेकर स्विष्टकृत पर्यन्त दशाहुतियों का होम करे। फिर संस्क-

ओं—त्वंनो अग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेडोऽअवयासिसीष्ठाः। यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषाꣳसि प्रमुमुग्ध्यस्मत्स्वाहा ॥ १ ॥ इदमग्नीवरुणाभ्यां न मम। ओं स त्वन्नो अग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठो अस्या उषसो व्युष्टौ। अवयक्ष्व नो वरुणꣳरराणो वीहि मृडीकꣳसुहवो नएधि स्वाहा ॥ २ ॥ इदमग्नीवरुणाभ्यां न मम। ओम्—अयाश्चाग्नेऽस्यनभिशस्तिपाश्च सत्यमित्त्वमयाअसि। अया नो यज्ञं वहास्यया नो धेहि भेषजꣳस्वाहा ॥ ३ इदमग्नये नमम ॥ ओम्—ये ते शतं वरुण ये सहस्रं यज्ञियाः पाशा वितता महान्तः। तेभिर्नोअद्य सवितोत विष्णुर्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्काः स्वाहा ॥ ४ इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्यो मरुद्भ्यः स्वर्केभ्यश्च न मम। ओम्—उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं विमध्यमꣳश्रथाय। अथावयमादित्य

व्रते तवानागसो अदितये स्याम स्वाहा ॥५॥ इदं वरुणाय न मम। एताः सर्वप्रायश्चित्ताहुतयः । ओम्–प्रजापतये स्वाहा । इदं प्रजापतये न मम। इति मनसा प्राजापत्यम् । ओम्–अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा। इदमग्नये स्विष्टकृते न मम ।

ततः संस्रवं प्राश्य पूर्णपात्रवरयोरन्यतरं ब्रह्मणे दद्यात्। ओमद्य कृतैतद्वेदारम्भहोमकर्मणि कृताकृतावेक्षणरूपब्रह्मकर्मप्रतिष्ठार्थमिदं पूर्णपात्रं प्रजापतिदैवतममुकगोत्रायामुकशर्मणे ब्रह्मणे ब्राह्मणाय दक्षिणां तुभ्यमहं सम्प्रददे–इति सङ्कल्प्य दद्यात् । ओं स्वस्तीति प्रतिवचनम् । ततः–ओम् सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु–इति पवित्राभ्यां प्रणीताजलमानीय तेन शिरः संमृज्य–ओम् दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः । इति मन्त्रेणैशान्यां प्रणीतान्युब्जीकरणम् । ततः स्तरणक्रमेण बर्हिरुत्थाप्य घृतेनाभिघार्य हस्तेनैव जुहुयात् । ओम्–देवा गातुविदो गातुं वित्त्वा गातुमित। मनसस्पत इमं देवयज्ञꣳ स्वाहा वाते धाः

संस्रवप्राशन करके पूर्णपात्र वा धन दक्षिणा में से एक सङ्कल्प पूर्वक ब्रह्मा को देवे। ब्रह्मा (ओम्–स्वस्ति) कहकर स्वीकार करे । तब (सुमित्रिया न०) मन्त्र से पवित्रों द्वारा प्रणीता के जल को अपने शिर में छिड़क के (दुर्मित्रिया०) मन्त्र से प्रणीता के शेष जल को ऐशानकोण में ढरका देवे । तदनन्तर वेदि के सब ओर जिस क्रम से कुश बिछायेथे उसी क्रम से उठाकर घीसे अभिघारण करके (ओम्–देवागातु०) मन्त्रद्वारा हाथ से ही त्यागान्त में होम करदेवे । तब आ-

स्वाहा ॥८॥ इदं वाताय न मम । इति वहिर्होमः । तत आचार्यो वेदारम्भं कारयेत् । तत्र क्रमः—ओ३म्—भूर्भुवः स्वः—तत्सवितुर्वरेण्यं, भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात्—ओ३म् ॥ इति प्रणवान्तं पठित्वा यथेष्टमेकं द्वौ त्रीन् चतुरो वा वेदान् पाठयितुमारभेत । ततः सप्रणवं स्वस्तिवाचयित्वोत्थाय फलपुष्पसमन्वितब्रह्मचारिदक्षिणकरस्पृष्टेन घृतपूर्णेन स्रुवेण पूर्णाहुतिं दद्यात् । ओं मूर्द्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृतआजातमग्निम् । कविᳮसम्राजमतिथिं जनानामासन्नापात्रं जनयन्त देवाः स्वाहा ॥ इदमग्नये वैश्वानराय न मम । तत उपविश्य स्रुवेण भस्मानीय दक्षिणानामिकाग्रगृहीतभस्मना ललाटादि स्पृशेत् । ओम्—त्र्यायुषं जमदग्नेः । इति ललाटे । ओम्—कश्यपस्य त्र्यायुषम् । इति ग्रीवायाम् । ओम्—यद्देवेषु त्र्यायुषमिति दक्षिणबाहुमूले । ओम्—तन्नो अस्तु त्र्यायुषमिति हृदि । अनेनैव क्रमेण ब्रह्मचारिललाटादावपि भस्म योजयेत् । तत्र तन्नोऽस्त्वस्य स्थाने तत्ते इत्यूहः कार्य्यः ॥ इति वेदारम्भः समाप्तः ॥

चार्य शिष्य को वेदारम्भ करावे । प्रथम आदि में प्रणव तदनन्तर व्याहृति तथा अन्त में केवल प्रणव ऐसे गायत्री मन्त्र का उच्चारण करके पश्चात् एक दो तीन वा चारों वेदों को पढ़ाने का आरम्भ करे । तब आचार्य कहे (ओ स्वस्ति—इति ब्रूहि) ब्रह्मचारी (ओ स्वस्ति) कहे । तदनन्तर आचार्य उठ खड़ा होके घी से भरे फल फूलों सहित स्रुवा को ब्रह्मचारी के दहिने हाथ से पकड़वाके (मूर्द्धानं०) मन्त्र से पूर्णाहुति दिलावे । तदनन्तर बैठकर स्रुवा के मूलद्वारा भस्म लेके दहिने हाथ की अनामिका अङ्गुली के अग्रभाग से अपने ललाटादि अङ्गों में भस्म लगावे । (त्र्यायुषम्०) से ललाट में (कश्यपस्य०) से कण्ठ में (यद्देवेषु०) से दक्षिण बाहु मूल में और (तन्नो अस्तु०) से हृदय में भस्म लगावे । इसी क्रम से ब्रह्मचारी के ललाटादि में भी भस्म लगावे । ब्रह्मचारी के भस्म लगाते समय (तन्नो) के स्थान में (तत्ते) बोले ॥ इति वेदारम्भः समाप्तः ॥

अथ समावर्त्तनम् ॥

ब्रह्मचारी साङ्गमेकं द्वौ सर्वान् वा वेदान् नियमेनाधीत्य समावर्त्तनं चिकीर्षुर्गुरुमाचार्यमर्थदानेन सम्पूज्याचार्येणानुज्ञातः शुभदिने समावर्त्तनं कुर्यात्। ब्रह्मचारी कृतनित्यक्रियः कृतप्रातरग्निकार्यश्चाचार्यसन्निधावासीत। तदा कृतस्नानादिक्रियश्चाचार्यः प्राणानायम्य देशकालौ स्मृत्वाऽस्य ब्रह्मचारिणो गृहस्थाद्याश्रमान्तरप्राप्तिद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं समावर्त्तनाख्यं कर्माहं करिष्यइति संकल्पं कुर्यात्। ततो ब्रह्मचारी प्रह्वीभूयाहं स्नास्यामीत्याचार्यं वदेत्। स्नाहीत्याचार्येणोक्ते ब्रह्मचारी गुरोः पादौ स्पृशेत्। ततो ब्रह्मचारिणि, आचार्यसन्निहितदक्षिणदिश्युपविष्टे आचार्यः कुशैर्हस्तमात्रां भूमिं परिसमुह्य कुशानैशान्यां परित्यज्य गोमयोदकेनोपलिप्य स्रुवमूलेनोत्तरोत्तर-क्रमेण त्रिरुल्लिख्य-उल्ले-

भा०-अब समावर्त्तन संस्कार का विधान दिखाते हैं-ब्रह्मचारी अङ्गों सहित एक दो वा सब वेदों को नियमों के साथ पढ के समावर्त्तन करना चाहता हुआ प्रथम धन वस्त्रादि पदार्थ दे के आचार्य का पूजन करके आचार्य की आज्ञा ले के शुभ दिनमें समावर्त्तन करे। समावर्त्तन के दिन प्रात काल ब्रह्मचारी शौच स्नान समिदाधानादि नित्यकर्म करके आचार्य के समीप आकर बैठे। तब स्नानादि जिस ने प्रथम ही कर लिये हों ऐसा आचार्य प्राणायाम कर देश काल के स्मरण पूर्वक समावर्त्तन का संकल्प करे। तदनन्तर ब्रह्मचारी आचार्य से झुक कर कहे कि (अहं स्नास्यामि) आचार्य कहे (स्नाहि) तब ब्रह्मचारी गुरु के चरणस्पर्श करे। तदनन्तर आचार्य से दक्षिण अग्नि से पश्चिम पूर्वाभिमुख ब्रह्मचारी बैठे और आचार्य कुशों से होमार्थ भूमि का परिसमूहन कर कुशों को ईशानदिशा में फेंक कर गोबर और जल से लीप कर स्रुव के मूल से प्रागायत

खनक्रमेणोद्धृत्य जलेनाभ्युक्ष्याग्निमानीयाभिमुखंस्थापयेत्। ततः पुष्पचन्दनताम्बूलवासांस्यादाय—ओमद्यामुकशर्मणः कर्त्तव्यसमावर्त्तनहोमकर्मणि कृताकृतावेक्षणरूपब्रह्मकर्म कर्त्तुममुकगोत्रममुकशर्माणं ब्राह्मणमेभिः पुष्पचन्दनताम्बूल वासोभिर्ब्रह्मत्वेन त्वामहं वृणे। इति ब्रह्माणं वृणुयात्। ओम्—वृतोस्मीति प्रतिवचनम्। ततोऽग्नेर्दक्षिणतः शुद्धमासनं निधाय तदुपरि प्रागग्रान्कुशानास्तीर्य ब्रह्माणमग्नि प्रदक्षिणं कारयित्वाऽस्मिन् कर्मणि त्वं मे ब्रह्मा भवेत्यभिधाय भवानीति तेनोक्ते तदुपरि ब्रह्माणमुदङ्मुखमुपवेशयेत्। ततः प्रणीतापात्रं पुरतः कृत्वा वारिणा परिपूर्य कुशैराच्छाद्य ब्रह्मणो मुखमवलोक्याग्नेरुत्तरतः कुशोपरि निदध्यात्। ततः परिस्तरणम्—बर्हिषश्चतुर्थभागमादायाग्नेयादीशानान्तं, ब्रह्मणोऽग्निपर्यन्तम्। नैर्ऋत्याद्वायव्या-

---

उदक्सूस्थ तीन रेखा करे, उल्लेखनक्रम से मट्टी का उद्धरण कर जलसे अभ्युक्षण करे ऐसे पंचभूसंस्कार करके लौकिक अग्नि को लाकर स्थापित करे फिर पुष्प चन्दन ताम्बूल वस्त्रादि हाथ में ले के (ओमद्य०) इत्यादि संकल्प वाक्य पढ़ के कि अमुक ब्रह्मचारी के समावर्त्तन होम कर्म में मैं तुम को ब्रह्मा करके वरण करता हूं। ऐसे संकल्प पूर्वक ब्रह्मा का वरण करे। और पुष्पादि ब्रह्मा के हाथ में देवे। ब्रह्मा पुष्पादि को लेकर (वृतोऽस्मि) कहे। तब अग्नि से दक्षिण में शुद्ध आसन चौकी आदि विछाकर उस पर पूर्व को जिन का अग्रभाग हो ऐसे कुश विछाकर ब्रह्मा को अग्नि की प्रदक्षिणा कराके (अस्मिन् कर्मणि त्वं मे ब्रह्मा भव) इस कर्म में तुम मेरे ब्रह्मा हो ऐसा कह कर ब्रह्मा के (भवानि) कहने पर उस आसन पर ब्रह्माको उत्तराभिमुख बैठाकर प्रणीतापात्र को सामने रख के जल के भर के कुशों से आच्छादन कर ब्रह्मा का मुख अवलोकन करके अग्नि से उत्तर में कुशों पर प्रणीतापात्र को प्रागग्र रक्खे। तदनन्तर चार मुट्ठी कुश लेकर अग्निके सब ओर परिस्तरण करे—एक चौथाई कुश

न्तमग्नितः प्रणीतापर्यन्तम् । ततोऽग्नेरुत्तरतः पश्चिमदिशि पवित्रच्छेदनार्थं कुशत्रयं पवित्रकरणार्थं साग्रमनन्तर्गर्भं कुशपत्रद्वयम् । प्रोक्षणीपात्रमाज्यस्थाली संमार्जनकुशाः । उपयमनकुशाः । समिधस्तिस्रः । स्रुव आज्यम् । समिन्धनकाष्ठानि, समिधः । पर्युक्षणार्थमुदकम् । हरितकुशाः । अष्टावुदकुम्भाः । औदुम्बरं द्वादशाङ्गुलं दन्तधावनकाष्ठं ब्राह्मणस्य, दशाङ्गुलं क्षत्रियस्याष्टाङ्गुलं वैश्यस्य । दधि । नापितः । स्नानार्थमुदकम् । उद्वर्त्तनद्रव्यं चन्दनमहते वाससी । यज्ञोपवीते । पुष्पाणि । उष्णीषं कर्णालङ्कारौ । अञ्जनमादर्शः, नूतनं छत्रमुपानहौ च नव्ये । वैणवो दण्डः । पूर्णपात्रम्, पवित्रच्छेदनकुशानां पूर्वपूर्वदिशि क्रमेणासादनीयम् । इति पात्रासादनम् । ततः पवित्रच्छेदनकुशैः पवित्रे छित्वा सपवित्रकरेण प्रणीतोदकं त्रिः प्रोक्षणीपात्रे प्रक्षिप्यानामि-

---

अग्निकोण से ईशान दिशा तक, द्वितीय भाग ब्रह्मा के आसन से अग्निपर्यन्त तृतीय भाग नैर्ऋत्यकोण से वायुकोण पर्यन्त चौथा अग्नि से प्रणीतापर्यन्त बिछावे । तदनन्तर अग्निसे उत्तर में प्रागग्रसंस्थ पात्रासादन करे । पवित्र छेदनार्थ तीन कुश तथा पवित्रकरणार्थ अग्रभाग सहित जिन के भीतर अन्य कुश न हो ऐसे दो कुश, प्रोक्षणीपात्र, आज्यस्थाली, संमार्जनकुश, उपयमनकुश ढाक की तीन समिधा, स्रुव, आज्य, अग्नि के परिसमूहनार्थ शुष्क गोमय वा समिधा । पर्युक्षणार्थ जल, हरे कुश, आठ जल भरे घड़ा वा सकोरा, १२ अङ्गुल गूलर की लकड़ी की दातौन ब्राह्मण को दश अङ्गुल की क्षत्रिय को और आठ अङ्गुल की वैश्य को रक्खें । दही, नाई, स्नानार्थ जल, उबटने का वस्तु, चन्दन, नये कजे दो वस्त्र, दो यज्ञोपवीत, पुष्प, पगड़ी, कुण्डल, अञ्जन, दर्पण, नया छाता, नयेजूते, एक बांस की छड़ी, पूर्णपात्र, पवित्रच्छेदन कुशो से पूर्वपूर्व क्रम से सब का स्थापन उत्तर को अग्रभाग कर रक्खे । तदनन्तर पवित्रच्छेदनार्थ तीन कुशो से प्रादेशमात्र दो कुशों का छेदन करके पवित्र सहित दहिने हाथ से प्रणीता के जलको तीन

काङ्गुष्ठाभ्यां गृहीतपवित्राभ्यां तज्जलं किञ्चित् त्रिरुत्क्षिप्य प्रणीतोदकेन प्रोक्षणीपात्रं त्रिरभिषिच्य प्रोक्षणीजलेनासादितवस्तुसेचनं कृत्वाऽग्निप्रणीतापात्रयोर्मध्ये प्रोक्षणीपात्रं निदध्यात्। आज्यस्थाल्यामाज्यनिर्वापोऽधिश्रयणं ततः कुशान् प्रज्वाल्याज्योपरि प्रदक्षिणं भ्रामयित्वा वह्नौ तत्प्रक्षिप्य स्रुवं त्रिः प्रतप्य सम्मार्जनकुशानामग्रैरन्तरतो मूलैर्बाह्यतः स्रुवं संमृज्य प्रणीतोदकेनाभ्युक्ष्य पुनस्त्रिः प्रतप्याग्नेर्दक्षिणतो निदध्यात्। ततआज्यमग्नेरवतार्य त्रिः प्रोक्षणीवदुत्पूयावेक्ष्य सत्यपद्रव्ये तन्निरस्य पुनः प्रोक्षण्युत्पवनम्। ततउत्थायोपयमनकुशान् वामहस्ते कृत्वा प्रजापतिं मनसा ध्यात्वा तूष्णीं घृताक्तास्तिस्रः समिधोऽग्नौ

बार प्रोक्षणीपात्र में डालकर अनामिका और अङ्गुष्ठ से पकडे हुये पवित्रो से उस प्रोक्षणीस्थ जल का उत्पवन कर और प्रणीता के जल से प्रोक्षणीस्थ जल का पवित्रो द्वारा तीन बार अभिषेचन करके प्रोक्षणीपात्र के जल से आसादन किये आज्यस्थाली आदि का सेचन करके अग्नि और प्रणीतापात्र के बीच में प्रोक्षणीपात्र को रख देवे। तब आज्यस्थाली में घृतपात्र से घृत गिराके अग्नि पर तपने को रक्खे तदनन्तर सूखे कुश जलाकर घी के ऊपर प्रदक्षिण क्रम से भ्रमण कराके अग्नि में जलते कुश फेंक कर स्रुवा को तीन बार अग्नि में तपा के संमार्जन कुशो के अग्रभाग से भीतर को और कुशो के मूल भाग से बाहर की ओर स्रुवा को झाड़ पोछ शुद्धकर तथा प्रणीता के जल से सेचन करके और फिर तीनबार तपा के अग्नि से दक्षिण की ओर स्रुवा को धरदेवे। तत्पश्चात् तपते हुए घी को अग्नि से उतार के तीनबार प्रोक्षणी के तुल्य पवित्रों से घी का उत्पवन करके देखे यदि घृत में कुछ निकृष्ट वस्तु हो तो निकाल कर फेंक देवे और फिर तीन बार प्रोक्षणीपात्र का उत्पवन करे। तदनन्तर उठ कर उपयमनकुशो को वाम हाथ में लेके प्रजापति का मन से ध्यान करके घृत में डुबोई तीन समिधाओं को तूष्णीं बिना मन्त्र पढ़े एक २ कर अग्नि में चढावे। फिर बैठ कर

प्रक्षिपेत् । पुनरुपविश्य सपवित्रप्रोक्षण्युदकेन प्रदक्षिणक्रमेणाग्निमुदक्संस्थं पर्युक्ष्य प्रणीतापात्रे पवित्रे निधाय प्रोक्षणीपात्रं विसर्जयेत् । ततः पातितदक्षिणजानुर्ब्रह्मणान्वारब्धः समिद्धतमेऽग्नौ स्रुवेणाज्याहुतीर्जुहुयात् । तत्र तत्तदाहुत्यानन्तरं स्रुवावस्थितघृतशेषस्य प्रोक्षणीपात्रे प्रक्षेपः—

ओं प्रजापतये स्वाहा । इदं प्रजापतये न मम । इति मनसा । ओम्—इन्द्राय स्वाहा । इदमिन्द्राय न मम । इत्याघारौ । ओमग्नये स्वाहा । इदमग्नये न मम । ओम्—सोमाय स्वाहा । इदं सोमाय न मम ॥ इत्याज्यभागौ ।

तत आज्यभागानन्तरम् । यदि ऋग्वेदमधीत्य स्नायात् तदा—ओम्—पृथिव्यै स्वाहा । इदं पृथिव्यै न मम । ओमग्नये स्वाहा । इदमग्नये न मम । इत्याहुतिद्वयानन्तरम्—ओम्—

पवित्रसहित प्रोक्षणी के जल को प्रदक्षिणक्रम से ईशान कोण से लेकर उत्तर दिशा तक अग्नि के सब ओर सेचन करे अर्थात् प्रोक्षणीपात्र का सब जल पर्युक्षण में गिरा देवे । प्रणीतापात्र में दोनों पवित्र रखके प्रोक्षणी पात्र का विसर्जन करे । तदनन्तर दहिने घोटू को भूमि में टेक कर ब्रह्मा से अन्वारब्ध हुआ ब्रह्मचारी प्रज्वलित अग्नि में स्रुवा से आज्याहुतियों का होम करे । वहां २ उसर आहुति के देने पश्चात् स्रुवा में जो घृतबिन्दु बचें उन को प्रोक्षणीपात्र में डालता जावे । प्रजापति का मन से ध्यान कर पूर्वाघार की तूष्णी आहुति देवे । त्याग सब का ब्रह्मचारी स्वयं बोलता जाय । तदनन्तर आघार की दो और आज्यभाग की दो आहुति देवे ।

इस प्रकार आज्यभागों के पश्चात् यदि ऋग्वेद को पढ समाप्त करके स्नान करे तो पृथिवी और अग्नि के लिये दो आहुति देकर ब्रह्मादि की नौ आहुति करे ।

ब्रह्मणे स्वाहा। इदं ब्रह्मणे न मम। ओम्–छन्दोभ्यः स्वाहा। इदं छन्दोभ्यो न मम। ओम्–प्रजापतये स्वाहा। इदं प्रजापतये न मम। इति मनसा प्राजापत्यम्। ओम्–देवेभ्यः स्वाहा। इदं देवेभ्यो न मम। ओम्–ऋषिभ्यः स्वाहा। इदमृषिभ्यो न मम। ओं श्रद्धायै स्वाहा। इदं श्रद्धायै न मम। ओं मेधायै स्वाहा। इदं मेधायै न मम। ओं सदसस्पतये स्वाहा। इदं सदसस्पतये न मम। ओमनुमतये स्वाहा। इदमनुमतये न मम। यदि यजुर्वेदं समाप्य स्नायात्तर्हि–ओमन्तरिक्षाय स्वाहा। इदमन्तरिक्षाय न मम। ओं वायवे स्वाहा। इदं वायवे न मम। इत्याहुतिद्वयानन्तरं ब्रह्मणइत्यादिनवाहुतीर्जुहुयात्। यदि सामवेदं समाप्य स्नायात् तदा–ओं दिवे स्वाहा। इदं दिवे न मम। ओम्–सूर्याय स्वाहा। इदं सूर्याय न मम। इत्याहुतिद्वयं हुत्वा ब्रह्मण इत्यादिनवाहुतीर्जुहुयात्। यद्यथर्ववेदं समाप्य स्नायात्तदा–ओं दिग्भ्यः स्वाहा। इदं दिग्भ्यो न मम। ओं चन्द्रमसे स्वाहा। इदं चन्द्रमसे न मम। इत्याहुतिद्वयं हुत्वा ब्रह्मण इत्यादिनवाहुतीर्जुहुयात्। यदि सर्वान् वेदानधीत्य समाप्य स्नायात्तदाऽऽज्यभागानन्तरं प्रतिवेदं क्रमेण वेदाहुतिद्वयं

यदि यजुर्वेद को समाप्त करके स्नान करे तो अन्तरिक्ष और वायु के नाम से दो आहुति देकर ब्रह्मादि की नौ आहुति देवे। यदि सामवेद को समाप्त करके स्नान करे तो दिव् और सूर्य के लिये दो आहुति देकर ब्रह्मादि की नौ आहुति करे। यदि अथर्ववेद को समाप्त करके स्नान करे तो दिश् और चन्द्रमा के नाम से दो आहुति देकर ब्रह्मादि की नौ आहुति देवे। यदि सब वेदों को पढ समाप्त करके स्नान करे तो आज्यभागों के पश्चात् प्रत्येक वेद की क्रम से दो २

स्यमित्त्वमयाऽसि । अया नो यज्ञं वहास्यया नो धेहि भेषजꣳ स्वाहा ॥३॥ इदमग्नये न मम ॥ ओम्–ये ते शतं वरुण ये सहस्रं यज्ञियाः पाशा वितता महान्तः । तेभिर्नोऽअद्य सवितोत विष्णुर्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्काः स्वाहा ॥ ४ ॥ इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्यो मरुद्भ्यः स्वर्केभ्यश्च न मम ॥ ओम्–उदुत्तमं वरुणपाशमस्मदवाधमं विमध्यमꣳश्रथाय । अथावयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम स्वाहा ॥५॥ इदं वरुणाय न मम । एताः सर्वप्रायश्चित्ताहुतयः । ओम्–प्रजापतये स्वाहा । इदं प्रजापतये न मम । इति मनसा प्राजापत्यम् । ओम्–अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा । इद मग्नये स्विष्टकृते न मम । इति स्विष्टकृद्धोमः ॥

ततः संस्रवप्राशनम् । ततश्चाचम्य–ओमद्यकृतैतत्समावर्त्तनहोमकर्मणि कृताकृतावेक्षणरूपब्रह्मकर्मप्रतिष्ठार्थमिदं पूर्णपात्रं प्रजापति दैवतममुकगोत्रायामुकशर्म्मणे ब्राह्मणाय ब्रह्मणे दक्षिणां तुभ्यमहं सम्प्रददे । इति दक्षिणां दद्यात् ।

संस्रवप्राशन कर आचमन करके (ओमद्य०) इत्यादि संकल्प पूर्वक ब्रह्मा को

ओं स्वस्तीति प्रतिवचनम्। ततः पवित्राभ्यां प्रणीताजलेन-ओंसुमित्रियान आप ओषधयः सन्तु। इति मन्त्रेण स्वशिरः संमृज्य-ओंदुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः। इति मन्त्रेणैशान्यां प्रणीतान्युब्जीकुर्यात्। ततः स्तरणक्रमेण बर्हिरुत्थाप्य घृतेनाभिघार्य हस्तेनैव जुहुयात्।

ओम्-देवा गातुविदो गातुं वित्त्वा गातुमित। मनसस्पत इमं देवयज्ञꣲ स्वाहा वाते धाः स्वाहा ॥

इदं वाताय न मम। इति बर्हिर्होमः। ततो ब्रह्मचारी पादोपसंग्रहणपूर्वकं गुरुं नमस्कृत्य परिसमूहनादि ध्यायुपकरणान्तं समिदाधानमग्निमपरेणोपविष्टस्तस्मिन्नेवाग्नौ ब्रह्मणान्वारब्धः कुर्यात्। तत्र घृताक्तशुष्कनिषिद्धेतरेन्धनेन पञ्चाहुतीर्हस्तेनैव जुहुयात्-

ओमग्ने सुश्रवः सुश्रवसं मा कुरु स्वाहा।

ओं यथा त्वमग्ने सुश्रवः सुश्रवा असि स्वाहा

दक्षिणा देवे (ओं स्वस्ति०) कह कर ब्रह्मा दक्षिणा का स्वीकार करे। तब पवित्रों द्वारा प्रणीता का जल लेके (सुमित्रिया०) मन्त्र से अपने शिर पर मार्जन करे और प्रणीता के शेष जल को (दुर्मित्रिया०) मन्त्र द्वारा ईशान कोण में गिरा देवे तदनन्तर जिस क्रम से बिछाये थे उसी क्रम से सब कुशों को उठा कर घृत से अभिघारण करके (देवा गातु०) मन्त्र द्वारा हाथ से ही अग्नि में होम कर देवे। तदनन्तर ब्रह्मचारी आचार्य को चरणस्पर्श पूर्वक नमस्कार कर के अग्नि से पश्चिम में बैठा हुआ उसी अग्नि में ब्रह्मा के अन्वारम्भ करने पर अग्नि परिसमूहनादि ध्यायुप करण पर्यन्त समिदाधान करे। वहां प्रथम पक्ष में निषिद्ध ईंधन से भिन्न सूखे ईंधन को घी में डुबो २ कर (अग्नेसुश्रव०) आदि

ओमेवं माथं सुश्रवः सौश्रवसं कुरु स्वाहा। ओं-यथा त्वमग्ने देवानां यज्ञस्य निधिपा असि स्वाहा। ओमेवमहं मनुष्याणां वेदस्य निधिपो भूयासथं स्वाहा ॥

यदि हस्तेन परिसमूहनं-संधुक्षणं कुर्यात्तदा स्वाहापदं नोच्चारयेत्। ततः प्रदक्षिणमग्निमीशानकोणादारभ्योत्तरपर्यन्तं वारिणा पर्युक्ष्योत्थाय घृताक्तां प्रादेशमितां समिधमादायाग्नये समिधमिति जुहुयात्-

ओं-अग्नये समिधमाहार्षं बृहते जातवेदसे। यथा त्वमग्ने समिधा समिध्यसएवमहमायुषा मेधया वर्चसा प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन समिन्धे जीवपुत्रो ममाचार्यो मेधाव्यहमसान्यनिराकरिष्णुर्यशस्वी तेजस्वी ब्रह्मवर्चस्यन्नादो भूयासम्॥ एषा ते अग्ने समित्तया वर्द्धस्व चाचप्यायस्व वर्द्धिषीमहि च वयमा च प्यासिषीमहि स्वाहा ॥

मन्त्रो से पाच आहुति हाथ से ही देवे। यदि हाथ से धोके तो उक्त पांचो मन्त्रों में स्वाहा पद नहीं बोलना चाहिये। तदनन्तर अग्नि के प्रदक्षिणक्रम से (ईशान कोण से आरम्भ कर उत्तर पर्यन्त) सब ओर जलसेचन करके उठ कर घृत में डुबोई दशम्प्रहुल की एक समिधा को हाथ में लेकर (अग्नये समिधमृ०) मन्त्र से होम करे। तदनन्तर अन्य भी दो समिधाओं का इसी

ओं स्वस्तीति प्रतिवचनम्। ततः पवित्राभ्यां प्रणीताजलेन—ओं सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु। इति मन्त्रेण स्वशिरः संमृज्य—ओं दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः। इति मन्त्रेणैशान्यां प्रणीतान्युब्जीकुर्यात्। ततः स्तरणक्रमेण बर्हिरुत्थाप्य घृतेनाभिघार्य हस्तेनैव जुहुयात्।

ओम्—देवा गातुविदो गातुं वित्त्वा गातुमित। मनसस्पत इमं देवयज्ञꣳ स्वाहा वाते धाः स्वाहा॥

इदं वाताय न मम। इति बर्हिर्होमः। ततो ब्रह्मचारी पादोपसंग्रहणपूर्वकं गुरुं नमस्कृत्य परिसमूहनादि न्यायुधकरणान्तं समिदाधानमग्निमपरेणोपविष्टस्तस्मिन्नेवाग्नौ ब्रह्मणान्वारब्धः कुर्यात्। तत्र घृताक्तशुष्कनिषिद्धेतरेन्धनेन पञ्चाहुतीर्हस्तेनैव जुहुयात्—

ओमग्ने सुश्रवः सुश्रवसं मा कुरु स्वाहा।
ओं यथा त्वमग्ने सुश्रवः सुश्रवा असि स्वाहा

दक्षिणा देव (ओं स्वस्ति०) कह कर ब्रह्मा दक्षिणा का स्वीकार करे। तब पवित्रों द्वारा प्रणीता का जल लेके (सुमित्रिया०) मन्त्र से अपने शिर पर मार्जन करे और प्रणीता के शेष जल को (दुर्मित्रिया०) मन्त्र द्वारा ईशान कोण में गिरा देवे तदनन्तर जिस क्रम से बिछाये थे उसी क्रम से सब कुशों को उठा कर घृत से अभिघारण करके (देवा गातु०) मन्त्र द्वारा हाथ से ही अग्नि में होम कर देवे। तदनन्तर ब्रह्मचारी आचार्य को चरणस्पर्श पूर्वक नमस्कार कर के अग्नि से पश्चिम में बैठा हुआ उसी अग्नि में ब्रह्मा के अन्वारम्भ करने पर अग्नि परिसमूहनादि न्यायुध करण पर्यन्त समिदाधान करे। यहां प्रथम पक्ष में निषिद्ध इंधन से भिन्न सूखे ईंधन को घी में डुबो २ कर (अग्नेसुश्रवः०) आदि

ओमेवं माथं सुश्रवः सौश्रवसं कुरु स्वाहा। ओं-यथा त्वमग्ने देवानां यज्ञस्य निधिपा असि स्वाहा। ओमेवमहं मनुष्याणां वेदस्य निधिपो भूयासथं स्वाहा ॥

यदि हस्तेन परिसमूहनं-संधुक्षणं कुर्यात्तदा स्वाहापदं नोच्चारयेत्। ततः प्रदक्षिणमग्निमीशानकोणादारभ्योत्तरपर्यन्तं वारिणा पर्युक्ष्योत्थाय घृताक्तां प्रादेशमितां समिधमादायाग्नये समिधमिति जुहुयात्-

ओं-अग्नये समिधमाहार्षं बृहते जातवेदसे। यथा त्वमग्ने समिधा समिध्यसएवमहमायुषा मेधया वर्चसा प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन समिन्धे जीवपुत्रो ममाचार्यो मेधाव्यहमसान्यनिराकरिष्णुर्यशस्वी तेजस्वी ब्रह्मवर्चस्यन्नादो भूयासम्॥ एषा ते अग्ने समित्तया वर्द्धस्व चाचप्यायस्व वर्द्धिषीमहि च वयमा च प्यासिषीमहि स्वाहा ॥

मन्त्रों से पांच आहुति हाथ से ही देवे। यदि हाथ से धोके तो उक्त पांचो मन्त्रों में स्वाहा पद नहीं बोलना चाहिये। तदनन्तर अग्नि के प्रदक्षिणक्रम से (ईशान कोण से आरम्भ कर उत्तर पर्यन्त) सब ओर जलसेचन करके उठ कर घृत में डुबोई दशाङ्गुल की एक समिधा को हाथ में लेकर (अग्नये समिधमृ०) मन्त्र से होम करे। तदनन्तर अन्य भी दो समिधाओं का इसी

ततः समिदन्तरद्वयमनेनैव मन्त्रेणैकैकां हुत्वा-उप-विश्य-अग्नेसुश्रवइति पञ्चमन्त्रैः पूर्ववदग्निपरिसमूहनं कुर्यात्। ततोऽग्निं प्रदक्षिणं वारिणा पर्युक्ष्य तूष्णीं पाणी प्रतप्य तनूपाइति प्रतिमन्त्रान्ते मुखमवमृशेत् ॥

ओं-तनूपाअग्नेऽसि तन्वं मे पाहि। ओं-आयुर्दा अग्नेऽस्यायुर्मे देहि। ओं-वर्चोदा अग्नेऽसि वर्चो मे देहि। ओं-अग्ने यन्मे तन्वा ऊनं तन्म आपृण। ओं-मेधां मे देवः सविता आदधातु। ओं-मेधां मे देवी सरस्वती आदधातु। ओं-मेधां मे अश्विनौ देवावाधत्तां पुष्करस्रजौ ॥

ततोऽङ्गानि च म इति दक्षिणपाणिना सर्वगात्राणि स्पृशेत्।

ओं-अङ्गानि च मआप्यायन्ताम् ॥

ततः प्रतिमन्त्रान्ते तत्तदङ्गं स्पृशेत्।

ओं-वाक्चमआप्यायताम्। इति मुखम्,

ओं-प्राणश्चमआप्यायताम्। इति नासिकाछिद्रे

प्रकार इसी मन्त्रको दो बार पढ़२के अन्यदो समिधाका होम करे। फिर बैठ के (अग्ने सुश्रव०) इत्यादि पांच मन्त्रों से पूर्ववत् अग्नि को परिसमूहन करे अथवा पोंछे। फिर पूर्ववत् अग्नि का पर्युक्षण कर अर्थात् सब ओर जलसेचन करके विना मन्त्र पढ़े हाथ तपा २ कर (तनूपा०) इत्यादि प्रत्येक मन्त्र के अन्त में मुख का स्पर्श करता जावे। तदनन्तर (अङ्गानि च म०) इत्यादि मन्त्रसे दक्षिण हाथ से सब गात्रों का स्पर्श करे। तिस पीछे प्रत्येक मन्त्र के अन्त में उस २ अङ्ग का स्पर्श करे। (वाक्च०) से मुखका (प्राणश्च०) से नासिका के दोनों छिद्रों का (चक्षुश्च०)

ओं-चक्षुश्चमआप्यायताम्। इति सहैव चक्षुर्द्वयम्

ओम्-श्रोत्रं च म आप्यायताम्।

इति दक्षिणकरेणैव श्रोत्रद्वयमादौ दक्षिणं ततो वामम्। भेदे मन्त्रावृत्तिः सान्निपात्यात्।

ओं यशोबलंचमआप्यायताम्।

इति मन्त्रपाठमात्रं कार्यम्।

ततो दक्षिणकरानामिकाग्रगृहीतभस्मना ललाटादिकं स्पृशेत्।

ओं त्र्यायुषं जमदग्नेः। इति ललाटे।

ओंकश्यपस्य त्र्यायुषम्। इति कण्ठे।

ओम्-यद्देवेषु त्र्यायुषम्। इति दक्षिणबाहुमूले।

ओम्-तन्नोअस्तुत्र्यायुषम्।

इतिहृदि। ततो निमीलितचक्षुर्मनसा पूर्वं सर्वत्र व्यापिनं वैश्वानरमेवं वरुणंचाभिवाद्याचार्यमभिवादयेत्। तत-

---

से एक साथ दोनों आंखों का और (श्रोत्रंच म०) से दहिने ही हाथ से दोनों कानों का प्रथम दहिने तदनन्तर बांये का स्पर्श करे और दोनों कान के पृथक् २ स्पर्श में दो बार मन्त्र पढ़ना चाहिये। तदनन्तर (यशो०) मन्त्र का पाठ मात्र करे। तिस पीछे दहिने हाथ की अनामिका अङ्गुलि के अग्रभाग से ग्रहण किये भस्म से ललाटादि अङ्गों का स्पर्श करे (त्र्यायुषं०) से मस्तक में (कश्यपस्य०) से कण्ठ में (यद्देवेषु०) से दहिने बाहु के मूल में और (तन्नो०) से हृदय में भस्म लगावे। तब चक्षु बन्द करके प्रथम सर्वत्र व्यापक वैश्वानर और वरुण नामक परमात्मा को हाथ जोड़ अभिवादन करके आचार्य को अभिवादन करे। अभिवादन में (अमुकगोत्रोऽमुकप्रवरोऽमुकशर्माऽहं भोस्त्वामभिवा-

आयुष्मान् भव सौम्यइत्याचार्यो ब्रूयात् । ततोऽग्नेरुत्तरतः प्रागग्रान् कुशानास्तीर्य तदुपरि दक्षिणोत्तरक्रमेणासादिता-मलवारिपूर्णकलशाष्टतये कलशानां पुरस्तात्प्रागग्रेषु कुशेषु स्थित्वा एकस्मादाम्रपल्लवेन-

ओं येऽअप्स्वन्तरग्नयः प्रविष्टा गोह्यउप-गोह्यो मयूषो मनोहास्खलो विरुजस्तनूदूषु-रिन्द्रियहा तान्विजहामि यो रोचनस्तमिह गृह्णामि ॥ इति मन्त्रेणापो गृहीत्वा-

ओं तेन मामभिषिञ्चामि श्रियै यशसे ब्रह्मवर्चसाय ॥

इत्यात्मानमभिषिञ्चेत् । ततो द्वितीयघटस्थमुदकं ये अप्स्वन्तरग्नयइति मन्त्रेणाम्रपल्लवेन गृहीत्वा-

ओं येन श्रियमकृणुतां येनावमृशताᳬसुराम् । येनाक्ष्यावभ्यषिञ्चतां यद्वां तदश्विना यशः ।

इति मन्त्रेणाभिषिञ्चेत् । ततस्तेनैव क्रमेण ये अप्स्व-न्तरग्नय० इत्यनेन तृतीयकलशस्थं जलमादाय-

---

दवे) ऐसा वाक्य बोले और आचार्य उसके उत्तर में (आयुष्मान् भव सौम्य) ऐसा वाक्य कहे । तदनन्तर अग्नि से उत्तर में प्राग्ग्र कुशा बिछाके उन कुशों पर दक्षिण से उदक्संस्थ निर्मल जल से भरे आठ घड़े वा सकोरे धरे और घड़ों से पूर्व में प्रागग्र बिछाये कुशों पर ब्रह्मचारी उदङ्मुख खड़ा होके प्रथम कलशमें आम के पत्ते द्वारा (ये अप्स्वन्तर०) मन्त्र से जल ग्रहण करके (तेन मा०) मन्त्र से अपने ऊपर अभिषेक करे । तदनन्तर द्वितीय कलशस्थ जल को (ये अप्स्वन्त०) इसी मन्त्र से आम के पत्ते द्वारा लेके (येन श्रिय०) मन्त्र से अपने शरीर पर अभिषेक करे ।

ओमापो हिष्ठा मयोभुवस्तानऊर्जे दधा-तन । महे रणाय चक्षसे ॥

इति मन्त्रेणाभिषिञ्चेत् । पुनस्तेनैव क्रमेण ये अप्स्व-न्त० इति मन्त्रेण चतुर्थकलशस्थं जलमादाय—

ओं—यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजय-तेह नः । उशतीरिव मातरः ॥

इति मन्त्रेणाभिषिञ्चेत् । पुनः पञ्चमकलशस्थं जलं येऽअप्स्वन्तरग्नयइति मन्त्रेण तथैवादाय—

ओं—तस्मा अरंगमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ । आपो जनयथा च नः ॥

इति मन्त्रेणाभिषिच्यावशिष्टकलशत्रितयजलं तथैव येऽप्स्वन्तरग्नयइति मन्त्रेण प्रत्येकमादायादाय तूष्णीं प्रत्येकमभिषिञ्चेत् । तत उदुत्तममिति शिरोभागेन मेखलां मोचयेत्—

ओमुदुत्तमं वरुणपाशमस्मदवाधमं वि-मध्यमं श्रथाय । अथावयमादित्य व्रते त वानागसो अदितये स्याम ॥

फिर उसी प्रकार उसी मन्त्र से तृतीय कलश में से जल लेके (आपोहिष्ठा०) मन्त्र से अपने ऊपर सेचन करे । फिर उसी प्रकार उसी मन्त्र से चौथे घड़े में से जल लेके (यो व शिव०) मन्त्रसे अपने ऊपर सेचन करे । फिर पांचवें कलश से भी उसी प्रकार उसी मन्त्र से जल लेकर (तस्माअरंग०) मन्त्र से अपने ऊपर सेचन करे । तदनन्तर शेष रहे तीन कलशोंमें से प्रत्येक के जलको (येअप्स्वन्तर०) मन्त्र से ही तीन बार लेकर प्रत्येक से तूष्णीं विना मन्त्र पढ़े अपने ऊपर सेचन करे । तब (उदुत्तमं०) मन्त्र पढ़ के शिर के द्वारा मेखला को निकाल के

ततो ब्रह्मचारी दण्डकृष्णाजिने तूष्णीं भूमौ निधायान्यद्वस्त्रं परिधायोत्तरीयं च कृत्वाऽऽदित्यमुपतिष्ठेत–

ओं–उद्यन्भ्राजभृष्णुरिन्द्रो मरुद्भिरस्थात् प्रातर्यावभिरस्थाद्दशसनिरसि दशसनिं मा कुर्वाविदन्मागमय। उद्यन्भ्राजभृष्णुरिन्द्रो मरुद्भिरस्थाद् दिवायावभिरस्थाच्छतसनिरसि शतसनिं मा कुर्वाविदन्मागमय। उद्यन्भ्राजभृष्णुरिन्द्रो मरुद्भिरस्थात्सायंयावभिरस्थात्सहस्रसनिरसि सहस्रसनिं मा कुर्वाविदन्मागमय ॥

ततो दधि तिलान्वा प्राश्याचम्य जटा लोमनखादींश्छेदयित्वा स्नात्वाचम्य प्रादेशमितोदुम्बरकाष्ठेनान्नाद्यायेति मन्त्रेण दन्तधावनं कुर्यात्।

ओमन्नाद्याय व्यूहध्वꣳ सोमो राजाऽयमागमत्। स मे मुखं प्रमाक्ष्यते यशसा च भगेनच ॥

अलग धरे। तदनन्तर ब्रह्मचारी दण्ड और कृष्णाजिन को बिना मन्त्र भूमिपर धरके अन्य वस्त्र पहन के और एक अंगोछा कन्धापर डालकर (ओमुद्यन्भ्राज०) मन्त्र पढ के सूर्य का उपस्थान करे। तदनन्तर थोड़े दही वा तिलों को खाकर जटा लोम और नखोंका नाई से छेदन कराके [ब्रह्मचर्याश्रम में सब बाल और नख न कटाने का नियम रहा] स्नान कर आचमन करके प्रादेशमात्र १२ अङ्गुल प्रमाण गूलर की दातौन (अन्नाद्याय०) मन्त्र पढ के करे। क्षत्रिय स्नातक

इति दन्तधावनमन्त्रः ॥ ततो दन्तकाष्ठं परित्यज्याचम्य सुगन्धिद्रव्येणोद्वर्त्तनं कृत्वा स्नात्वा च द्विराचम्य चन्दनकुङ्कुमादिना नासिकाया मुखस्य चालम्भनं कार्यम्।

ओं प्राणापानौ मे तर्पय । ओं चक्षुर्मे तर्पय । ओं श्रोत्रं मे तर्पय ॥

इति मन्त्रेणत्रिष्वनुलिम्पेत्। ततो हस्तौ प्रक्षाल्य पातितवामजानुः कृतापसव्यो दक्षिणामुखो द्विगुणभुग्नकुशत्रयतिलजलान्यादाय–आस्तृतकुशत्रयोपरि पितॄंस्तर्पयेत्।

ओम् पितरः शुन्धध्वम् ॥

ततः सव्यं कृत्वाऽपउपस्पृश्याचम्यसुगन्धिमनुलिप्य जपेत्।

ओं सुचक्षा अहमक्षीभ्यां भूयासꣳ सुवर्चा मुखेन सुश्रुत्कर्णाभ्यां भूयासम् ॥

ततोऽहतं वासोऽमौत्रधौतं वा परिधास्याइति परिदधीत।

ओम्–परिधास्यै यशो धास्यै दीर्घायुत्वाय

हो तो दश अङ्गुल की और वैश्य हो तो आठ अङ्गुल की दातौन करे। तब दातौन को छोड़ कुल्ला तथा आचमन करके सुगन्धित द्रव्य से उपटन करे। फिर स्नान कर दो बार आचमन करके मिला कर घिसे चन्दन और केशर को (प्राणापानौ०) आदि तीन मन्त्रों से नासिका चक्षु और कानों में लगावे। तब हाथ धो बायें घोटू को पृथिवी में टेक कर अपसव्य हो दक्षिण को मुख कर के तीन कुशों को ले द्विगुण कर पृथिवी पर बिछादे फिर तिल और जल लेकर उन कुशों पर पितरों का तर्पण (ओ पितर०) मन्त्र से करे। फिर सव्य हो, दहिने हाथ से जल स्पर्श करके आचमन कर आंख मुख और कानों में घिसे हुए चन्दन केशर को लगाके (ओं सुचक्षा०) इत्यादि तीन मन्त्रों का जप करे। तदनन्तर,

जरदष्टिरस्मि शतं च जीवामि शरदः पुरू-
चीरायस्पोषमभिसंव्ययिष्ये ॥

ततो यज्ञोपवीतमिति द्वितीयं यज्ञसूत्रद्वयं धारयेत्—

ओम्—यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापते-
र्यत्सहजं पुरस्तात्। आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च
शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः ॥

यज्ञोपवीतमिति प्रजापतिर्ऋषिर्यजुरुपवीतदेवता। यज्ञोपवीतपरिधाने विनियोगः।

ओम्। यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्य त्वा यज्ञोप-
वीतेनोपनह्यामि॥

तत आचम्योत्तरीयं वासः परिदधीत—

ओम्—यशसा मा द्यावापृथिवी यशसे-
न्द्राबृहस्पती। यशो भगश्च मा विदद्यशो मा
प्रतिपद्यताम् ॥

एकमेव वासश्चेत्पूर्वस्यैवोत्तरभागेनोत्तरीयधारणम्। ततः—

ओम्—या आहरज्जमदग्निः श्रद्धायै मे-

कोरे वस्त्र को वा जो धोबी का धोया न हो ऐसे शुद्ध श्वेत वस्त्र को (परिधास्यै०) मन्त्र से धारण करे। तदनन्तर (यज्ञोपवीतं परमं०) इत्यादि दो मन्त्रों से अन्य दो यज्ञोपवीत धारण करे। फिर आचमन करके द्वितीय वस्त्र अंगोछा वा दुपट्टा को (यशसा मा०) मन्त्र से ओढ़े। यदि एक ही वस्त्र हो तो उसी एक धोतीका आधा भाग ऊपरी शरीर भाग में ओढ़ लेवे। तदनन्तर (या आहर०)

धायै कामायेन्द्रियाय। ताञ्चहं प्रतिगृह्णामि यशसा च भगेन च ॥

इति मन्त्रेण पुष्पमालां गृहीत्वा यद्यश इति तां कण्ठे धारयेत्।

ओम्-यद्यशोऽप्सरसामिन्द्रश्चकार विपुलं पृथु। तेनसंग्रथिताः सुमनस आबध्नामि यशो मयि॥

अथ युवासुवासाइत्युष्णीषेण शिरो वेष्टयेत् ।

ओम्-युवा सुवासाः परिवीत आगात्स उ श्रेयान्भवति जायमानः । तं धीरासः कवयउन्नयन्ति स्वाध्यो मनसा देवयन्तः ॥

ततोऽलङ्करणमिति मन्त्रावृत्त्या दक्षिणे वामे च कर्णे कुण्डले परिदधीत ।

ओमलङ्करणमसि भूयोऽलङ्करणं भूयात् ॥

ततो वृत्रस्यासीति मन्त्रावृत्त्या प्रथमं वामं ततो दक्षिणं चक्षुरञ्ज्यात् ।

ओम्-वृत्रस्यासि कनीनकश्चक्षुर्दाअसि चक्षुर्मे देहि । ततः-ओं रोचिष्णुरसि ।

इतिमन्त्रेणादर्शे आत्मानं पश्येत्। ततो बृहस्पतइति छत्रग्रहणम्

मन्त्र से पुष्पों की माला को हाथ में लेकर (यद्यशोऽप्सर०) मन्त्र से कण्ठ में धारण करे । फिर (युवा सुवासा०) मन्त्र से पगड़ी बांधे तब (अलङ्करणं०) मन्त्र को दो वार पढ़के प्रथम दहिने तदनन्तर बांये कान में सुवर्ण के कुण्डल पहिने । तदनन्तर (वृत्रस्यासि०) मन्त्र को दो वार पढ़के अञ्जन वा सुरमा दोनों आंखों में लगावे प्रथम वाम चक्षु में तदनन्तर दहिने में लगावे । तदनन्तर

13236

ओं बृहस्पतेश्छदिरसि पाप्मनो मामन्तर्धेहि । ततः पद्भ्यामुपानहौ प्रतिगृह्णीयात्—

ओं प्रतिष्ठे स्थो विश्वतो मा पातम् ।

ततो वैणवदण्डधारणम्—

ओं विश्वाभ्यो मानाष्ट्राभ्यस्परिपाहि सर्वतः॥

दन्तधावनादिकर्माण्यग्रेऽपि नित्यं मन्त्रैः स्नातकेनानुष्ठेयानि । वासश्छत्रोपानहं दण्डश्च यदाऽपूर्वं नूतनं धारयेत्तदा मन्त्रेण । अथ स्नातकस्य नियमाः कामादितरस्यापि गानवादित्रनृत्यत्यागः । न तत्र गमनम् । क्षेमे सति न रात्रौ ग्रामान्तरं गच्छेत् । न धावेत् । न कूपेऽवेक्षेत । वृक्षारोहणं फलत्रोटनं च न कुर्यात् । अमार्गेण न गच्छेत् । नग्नो न स्नायात् । न सन्धिवेलायां शयीत । न विषमभूमिं लङ्घयेत् । अश्लीलं वाक्यं नोपवदेत् । उदितास्तमयकाले सूर्यं न पश्येत् । जलमध्ये सूर्यच्छायां न पश्येत् । देवे वर्षति

(रोचिष्णु०) मन्त्र पढके दर्पण में अपनी आकृति देखे । फिर (बृहस्पतेश्छदि०) मन्त्र पढके नये छाता को हाथ में लेवे । फिर (प्रतिष्ठे स्थो०) मन्त्र को दो वार पढ २ के दोनों पगों में जूते पहिने प्रथम दहिने में फिर बायें में। तदनन्तर (विश्वाभ्यो०) मन्त्र से बांस की छड़ी धारण करे । स्नातक पुरुष दन्तधावनादि कामों को आगे भी नित्य २ मन्त्र से किया करे । परन्तु वस्त्र छाता जूता और छड़ी इन को जब २ नए २ धारण करे तभी मन्त्र पढे। अब संक्षेप से स्नातक के नियम लिखाते हैं—स्वयं कभी न गावे न बजावे न नाचे और न अन्य के गाने बजाने को देखने जावे । कोई हानि न होती हो तो रात्रि में कभी ग्रामान्तर को न जावे । न कभी दौड़े। न कुआ में झांके न वृक्ष पर चढे न फल तोड़े । विना मार्ग के न चले । नङ्गा होके स्नान न करे । सायंप्रातः सन्धि काल में न सोवे । विषम भूमिका लङ्घन न करे । निर्लज्जता के वचन कभी न बोले। उदयास्त समय सूर्य को न देखे । मेघ वर्षते में न निकले जल में अपनी छाया

न गच्छेत् । उदके नात्मानं पश्येत् । अजातलोम्नीं प्रमत्तां पुरुषाकृतिं षण्ढां च स्त्रियं न गच्छेत् । इत्यादि । तत आचार्याय वरां दक्षिणां दद्यात् । तत उत्थायाचार्यो मूर्द्धानमिति मन्त्रेण फलपुष्पसमन्वितघृतपूर्णस्रुवेण स्नातकदक्षिणकर स्पृष्टेन पूर्णाहुतिं कुर्यात ।

ओं मूर्द्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृतआजातमग्निम् । कविꣳ सम्राजमतिथिं जनानामासन्नापात्रं जनयन्त देवाः स्वाहा ॥

तत उपविश्य स्रुवेण भस्मानीय दक्षिणकरानामिकाग्रगृहीत भस्मना ललाटादि स्पृशेत्–

ओम्–त्र्यायुषं जमदग्नेः । इति ललाटे ।

ओं कश्यपस्य त्र्यायुषम् । इति कण्ठे ।

ओम्–यद्देवेषु त्र्यायुषम् । इति दक्षिणबाहुमूले ।

ओं तन्नो अस्तु त्र्यायुषम् ॥

न देखे । जिस के लोम उत्पन्न न हुए हों जो पागल हो जिस की बनावट पुरुष के तुल्य हो जो हिजड़ी हो ऐसी स्त्री से गमन न करे इत्यादि । तदनन्तर आचार्य को धनरूप अधिक दक्षिणा देवे । फिर आचार्य खड़ा होके फल पुष्पों सहित घृत भरे स्नातक के दहिने हाथ से स्पर्शकराये स्रुवा से (मूर्द्धानं०) मन्त्र पढ़के पूर्णाहुति देवे । फिर बैठ कर स्रुवासे भस्म लाकर दहिने हाथ की अनामिका अङ्गुलि के अग्रभाग से ग्रहण की भस्म से ललाटादि का स्पर्श करे । (त्र्यायुषं०) से ललाट में (कश्यपस्य०) से कण्ठ में (यद्देवेषु०) से दक्षिण बाहुके मूल में (तन्नो०) से हृदय में भस्म लगावे । इसी क्रम से आचार्य स्नातक

इति हृदि। अनेनैव क्रमेण स्नातकललाटादावपि त्र्यायुषं कुर्यात्। तत्र तन्नो इत्यस्य स्थाने तत्ते इत्यूहः कार्यः॥

इति समावर्त्तनं कर्म समाप्तम् ॥

अथ यस्य गर्भाधानादयः संस्काराः पित्रादिना प्रमादादिना न कृतास्तदर्थं विशेषउच्यते–

शौनकः–आरभ्याधानमाचौलात्कालेऽतीतेतुकर्मणाम्।
व्याहृत्याज्यंसुसंस्कृत्य हुत्वाकर्मयथाक्रमम्॥
एतेष्वेकैकलोपेतु पादकृच्छ्रंसमाचरेत्।
चूडायाअर्द्धकृच्छ्रंस्या–दापदीत्येवमीरितम्॥
अनापदितुसर्वत्र द्विगुणंद्विगुणंचरेत्।

कात्यायनः–लुप्तेकर्मणिसर्वत्र प्रायश्चित्तंविधीयते।

के ललाटादि में भी भस्म लगावे। स्नातक के भस्म लगाने में मन्त्रस्थ (तन्नो०) के स्थान में (तत्ते) ऊह करे। इति समावर्त्तनविधिः समाप्तः॥

भा०–जिस के गर्भाधानादि संस्कार पितादि ने प्रमादादि से नहीं किये उस के लिये विशेषता दिखाते हैं। शौनक ने कहा है कि गर्भाधान से लेकर चूडाकर्म संस्कार से पूर्व २ जिस का कोई संस्कार न हुआ हो तो पादकृच्छ्रादि व्रत करके अच्छे संस्कार किये पीछे व्याहृतियों द्वारा प्रायश्चित्त की आहुति बालक का पिता देकर उस २ संस्कार को करे। और एक ही एक संस्कार कोई छूटा हो तो बालक का पिता पादकृच्छ्रव्रत करे अर्थात् एक दिन प्रातःकाल एक दिन सायंकाल और बिनमांगे मिले तो तीसरे दिन एक बार थोड़ा हविष्य भोजन करे तथा एक दिन निराहार उपवास करे इस प्रकार चार दिन का व्रत कर के उस २ छूटे संस्कार को करे। यदि चूडाकर्म संस्कार छूटा हो तो दो दिन प्रातः काल दो दिन सायंकाल दो दिन बिनमांगे और दो दिन उपवास करे इस का नाम अर्द्धकृच्छ्रव्रत है। इतना प्रायश्चित्त आपत्काल में संस्कार छूटने पर है यदि आपत्काल न हो तो इस से दूना २ प्रायश्चित्त करे। कात्यायन

प्रायश्चित्तेकृतेपश्चा-ल्लुप्तंकर्मसमाचरेत् ॥
मण्डनः-कालातीतेषुसर्वेषु-प्राप्तवत्स्वपरेषुच ।
कालातीतानिकृत्वैव विदध्यादुत्तराणितु ॥

चौलातिरिक्तस्ययस्ययस्य गर्भाधानादिसंस्कारस्य कालोऽतीयात्तस्यतस्य लोपे पादकृच्छ्रं प्रायश्चित्तं कृत्वाऽकालेऽपि स स संस्कारः कार्यः । अनेकेषु लुप्तेषु प्रत्येकमेकैकं पादकृच्छ्रं विधाय यथाविधि लुप्तसंस्काराः कार्याः । चौललोपे त्वर्द्धकृच्छ्रं कृत्वा चूडाकर्म कार्यम् । यद्युपनयनात्प्राक् सर्वे संस्कारा लुप्तास्तदा प्रत्येकं पादकृच्छ्रं चूडाकर्मार्थमर्द्धकृच्छ्रं कार्यम् ॥

अथ पुनरुपनयनम् ।

अज्ञानात्प्राश्यविण्मूत्रं सुरासंसृष्टमेवच ।
पुनःसंस्कारमर्हन्ति त्रयोवर्णाद्विजातयः ॥ मनुः

ने कहा है कि कर्म का लोप होने पर सर्वत्र प्रायश्चित्त का विधान है और प्रायश्चित्त की समाप्ति में छूटे हुए कर्म को फिर से करे । मण्डन ने कहा है कि जिन संस्कारों का समय निकल गया और अगले का समय आगया हो तो प्रायश्चित्त पूर्वक पिछले संस्कारो को कर के ही अगले करे । चूडाकर्म से भिन्न जिस२ संस्कार का समय निकल जावे उस २ संस्कार को पूर्वोक्त पादकृच्छ्रव्रत करके अन्य काल में भी करे । कई संस्कार लुप्त हुए हो तो प्रत्येक के लिये एक २ पादकृच्छ्रव्रत करके विधिपूर्वक छूटे हुए संस्कारो को करे । यदि चूडाकर्म छूटा होतो अर्द्धकृच्छ्रव्रत करके चूडाकर्म फिर से करे । यदि उपनयन से पहिले सब संस्कार छूट गये हों तो प्रत्येक छूटे संस्कार के लिये पादकृच्छ्र और चूडाकर्म के लिये अर्द्धकृच्छ्रव्रत पूर्वोक्त प्रकार करे ।

अब यह दिखाते हैं कि किस २ दशामें पुनरुपनयन करना चाहिये । अर्थात् पहिले हुए उपनयन संस्कार को नष्ट हुआ मान कर फिर से उपनयन

अनाशकनिवृत्तश्च गार्हस्थ्यं चेच्चिकीर्षति ।
सचरेत्त्रीणिकृच्छ्राणि त्रीणिचान्द्रायणानिच ।
जातकर्मादिभिःसर्वैः संस्कृतःशुद्धिमाप्नुयात् ॥ पराशरः

इति पुनरुपनयनम् ॥

संस्कार करना चाहिये ? । मनु जी ने कहा है कि-अज्ञान से विष्ठा मूत्र को खा लेवे वा मद्य जिसमें मिला हो ऐसे किसी पदार्थ को खा लेवे तो द्विजाति तीनों वर्ण प्रायश्चित्त कर फिर से उपनयन संस्कार करें । पराशरस्मृति में कहा है कि-घर से निकल कर संन्यासी हुआ ब्राह्मण संन्यासाश्रम से लौट आवे और अभक्ष्य भक्षण से निवृत्त रहा हो तथा फिर गृहस्थ होना चाहता हो तो वह तीन प्राजापत्य १२ दिन के व्रत वा तीन चान्द्रायण व्रत करे तदनन्तर फिर से जातकर्मादि सब संस्कार करके शुद्ध हुआ गृहस्थकर्मों का अधिकारी हो सकता है । यह पुनरुपनयन का विचार समाप्त हुआ ॥

अथ वाग्दानम् ।

तावत्पूगीफलोपवीतदानं तत्र कन्याभ्राता पुरोधाश्चान्यो ब्राह्मणो वा कश्चिदुदङ्मुखः प्रत्यङ्मुखो वा उपविश्य प्राङ्मुखस्य वरस्य गन्धाक्षतैरर्च्चितस्य मुखदत्तखार्जूरादिफलस्य स्वयंपूगीफलयज्ञोपवीतमादाय—तस्मिन्कालेऽग्निसांनिध्ये स्नातः स्नातेह्यरोगिणि । अव्यङ्गेऽपतितेऽक्लीवे पितातुभ्यं प्रदास्यति । इति पठित्वा हस्ते दद्यात् ।

यजु० अध्याय १७ मंत्र ३

ओं ऋतवस्थऽऋतावृध ऋतुष्ठास्थ ऋतावृधः । घृतश्चयुतो मधुश्च्युतो विराजो नाम कामदुघाऽअक्षीयमाणाः ॥

अथ विवाहपद्धति । बारह वर्ष की कन्या और १८ वर्ष का वर हो वा दोनो इस से अधिक २ आयु के हो । १६ वर्ष की कन्या हो तो २४ वर्ष का पुरुष होवे । किन्तु १२ वर्ष से कम कन्या न हो और १८ वर्ष से कम वर न हो तब सम्बन्ध करें । उस में प्रथम वाग्दान करे—उस का विधानक्रम यह है कि—प्रथम सुपारी और यज्ञोपवीत का वर को दान करे । कन्या का भाई, पुरोहित या अन्य कोई ब्राह्मण वर के घर पर जाकर उत्तर वा पश्चिम को मुख कर बैठ कर वर को पूर्वाभिमुख आसन पर बैठावे वर के मुख में छुहारादि फल खाने को देवे और केशर तथा सुगन्ध द्वारा और अक्षतो द्वारा वर का पूजन करके अपने हाथ में सुपारी और यज्ञोपवीत लेकर (तस्मिन् काले०) इत्यादि श्लोक पढ के वर के हाथ में देवे । श्लोकार्थ—विवाह के समय अग्नि के समीप, नीरोग, ठीक २ पूर्ण अङ्गो वाले निष्पाप, शुद्ध, क्लीवतादि दोष रहित स्नानकर शुद्ध हुए आप को स्नान कर शुद्ध हुए मेरे पिता जी कन्या दान देंगे । यदि पुरोहित जावे तो कहे कि कन्या का पिता कन्या को देगा । पश्चात् (ऋतवस्थ०) मन्त्र पढ के अपना

इति पठित्वा शिरस्यक्षतादिकं दद्याद्वरः । भ्रातृव्यतिरिक्तपक्षे पितेत्यत्र दातेत्युच्चारयेत ॥ इति वाग्दानम् ॥

अथ विवाहः ॥

उदगयनआपूर्यमाणपक्षे पुण्याहे कुमार्याः पाणिं गृह्णीयात् । पारस्करसू० । सार्वकालमेके विवाहम् ॥२॥ आश्व० । त्रिपुत्रिपूत्तरादिषु ॥३॥ स्वातौ मृगशिरसि रोहिण्यां वा ॥४॥ पार० । तत्र कन्याहस्तेन षोडशहस्तपरिमितं मण्डपं विधाय तद्दक्षिणस्यां दिशि पश्चिमां दिशमाश्रित्य मण्डपसंलग्नमुत्तराभिमुखं कौतुकागारं च मण्डपाद्बहिरैशान्यां जामातृचतुर्हस्तपरिमितां सिकतादिपरिष्कृतां वेदीञ्च कारयेत् ।

पूजन करने वाले के शिर में वर चन्दन अक्षतादि लगावे । मन्त्र का अर्थ–वर कहता है कि हे कन्या के देने वाले लोगो ! आप लोग कन्यादान की सत्य प्रतिज्ञा में रहने वाले हो सत्य यज्ञादि कर्म के प्रचार तथा ऋतुयाग करने वाले घृत मिष्टादि भक्ष्य भोज्य सामान रखने वाले विशेष कर शोभित कामनाओं के पूर्ण करने वाले प्रसिद्ध हो और धनादि पदार्थ जिन के विद्यमान हैं ऐसे आप हैं ऐसा वर कहे । इति वाग्दानम् ॥

अथ विवाहविधिः ॥

उत्तरायण शुक्लपक्ष चं० बु० बृ० शु० पुण्य दिन में कुमारी कन्या का पाणिग्रहण करे । उत्तरा फल्गुनी, हस्त, चित्रा, उत्तराषाढा श्रवण, धनिष्ठा, उत्तरा भाद्रपदा, रेवती, अश्विनी, स्वाति, मृगशिरा, रोहिणी । इन में से किसी नक्षत्र में विवाह कर्म करे । यह पारस्कर गृह्य सूत्र कार का कथन है । तथा आश्वलायन गृह्य में लिखा है कि कोई २ आचार्य सब काल में विवाह का होना मानते हैं । विवाह के लिये प्रथम कन्या के हाथ से सोलह हाथ लम्बा चौड़ा चारो दिशा में चार २ हाथ मण्डप बनावे उस से ईशान कोण में कौतुकागार बनावे और मण्डप के ईशान कोण में जामाता के हाथ से चार हाथ चारो ओर से

विवाह मण्डप चित्र ॥

वेदी

मण्डप

ईशान पूर्व आग्नेय

उत्तर कन्या हस्त षोरश १६ दक्षिण

कौतुकागार

वायव्य पश्चिम नैर्ऋत

विवाहदिने कृतनित्यक्रियेण जामातृपित्रा मातृपूजापूर्वकं आभ्युदयिकं कर्तव्यम् ॥ कन्यापिता स्नातः शुचिः शुक्लाम्बरधरः कृतनित्यक्रियो मातृपूजाभ्युदयिके कृत्वा मण्डपे प्रत्यङ्मुखः प्राङ्मुखं वरमूर्ध्वजानुमासीनंसंबोध्य-

अथ स्वस्तिवाचनम् ॥

यजु० अध्याय २५ कं० १८ ॥

ओम्-स्वस्तिनऽइन्द्रोवृद्धश्रवाःस्वस्तिनः पूषा विश्ववेदाः। स्वस्तिनस्ताक्ष्योंऽरिष्टनेमिःस्वस्तिनोबृहस्पतिर्द्दधातु ॥१॥

यजु० अध्याय १८ कं० ३६ ॥

ओम्-पयःपृथिव्याम्पयऽओषधीषु पयो दिव्यन्तरिक्षे पयोधाः। पयस्वतीः प्रदिशः सन्तु मह्यम् ॥२॥

यजु० अध्याय ५ कं० २१ ॥

ओम्-विष्णोरराटमसि विष्णोः श्नप्त्रे स्थो विष्णोःस्यूरसि विष्णोर्ध्रु-

---

अर्थात् एक २ हाथ सब दिशाओं में हो ऐसी वेदी बनावे उस वेदि में कङ्कड़ भूसी वा बाल न पड़े हों। विवाह के दिन वर का पिता शौच स्नान नित्य कर्म करने पश्चात् मातृपूजा पूर्वक आभ्युदयिक कर्म करे। इधर कन्या का पिता भी विवाह के दिन स्नान कर शुद्ध हुआ शुद्ध वस्त्र पहन नित्य कर्म करके मातृपूजापूर्वक आभ्युदयिक कर्म करके वर पूजन के समय मण्डप में पश्चिमको मुख कर बैठे ऊपर को घोटू कर पूर्वाभिमुख बैठे वर को सम्बोधित कर के स्वस्ति-

वोऽसि। वैष्णवमसि विष्णवे त्वा ॥३॥

यजु० अध्याय १४ कं० २० ॥

ओम्—अग्निर्द्देवतावातोदेवतासूर्य्योदेवताचन्द्रमादेवतावसवोदेवतारुद्रादेवतादित्यादेवतामरुतोदेवताविश्वेदेवादेवताबृहस्पतिर्द्देवतेन्द्रो देवतावरुणोदेवता ॥४॥

यजु० अध्याय ३६ कं० १७ ॥

ओ३म्—द्यौःशान्तिरन्तरिक्षथंशान्तिःपृथिवीशान्तिरापःशान्तिरोषधयःशान्तिर्व्वनस्पतयःशान्तिर्विश्वेदेवाःशान्तिर्ब्रह्मशान्तिःसर्व्वथंशान्तिःशान्तिरेवशान्तिःसामाशान्तिरेधि ५

यजु० अध्याय ३० अनु० १ मं० ३ ॥

ओम्—विश्वानि देवसवितर्दुरितानिपरासुव। यद्भद्रन्तन्नऽआसुव ॥६॥

यजु० अध्याय १६ अनु ७ मं० ४८ ॥

ओम्—इमारुद्रायतवसेकपर्द्दिने क्षयद्वीरायप्रभरामहेमतीः। यथाशमसद्द्विपदेचतुष्पदेविश्वस्पुष्टङ्ग्रामेऽअस्मिन्ननातुरम् ॥

यजु० अध्याय २ मंत्र १२ ॥

ओं—एतन्तेदेवसवितर्य्यज्ञम्प्राहुर्व्बृहस्पतये

ब्रह्मणे। तेनयज्ञमवतेनयज्ञपतिन्तेनमामव ८ सुप्रतिष्ठितावरदाभवन्तुदेवाः ॥१०॥ इति स्वतिवाचनम् ॥

अथ प्रतिज्ञासंकल्पः ॥

ओंतत्सदद्य ब्रह्मणो द्वितीयपरार्द्धे श्रीश्वेतवाराहकल्पे जम्बूद्वीपे भरतखण्डे, आर्यावर्ते वर्तमानकलियुगप्रथमचरणे वैवस्वतमन्वन्तरे अष्टाविंशतिमे युगेऽमुकऋतौ अमुकमासे ऽमुकपक्षेऽमुकतिथौअमुकवासरान्वितायां अमुककरणनक्षत्रयोगयुक्तायां श्रुतिस्मृतिपुराणोक्तफलावाप्तिकामः धर्मार्थकाममोक्षार्थं मनोभिलषितप्राप्तये अमुकगोत्रोऽमुकशर्माऽहममुककर्मनिमित्तकल्याणार्थंनोशान्तिमहं करिष्ये। तन्निर्विघ्नपरिसमाप्तये गणपतिपूजनं च करिष्ये इति ॥

अथ-गणपतिपूजनम् ॥ ओं गणानां त्वागणपतिंहवामहेइतिमन्त्रेण। ओं भूर्भुवःस्वः भगवन्गणपतिदैवत इहागच्छ इहतिष्ठसुप्रतिष्ठवरदोभवममपूजांगृहाण ॥ पाद्यादिभिरर्चयेत्। भगवन्गणपतिदेवएतत्पाद्यादिभिर्गन्धाक्षतादिभिश्च पूजितःप्रसन्नो,भव ॥ पुनः। वक्रतुण्डमहाकायकोटिसूर्यसमप्रभ। अविघ्नंकुरुमेदेव सर्वकार्येषुसर्वदा। इति। अथ पञ्चोपकारपूजनम्। आवाहयाम्यहंदेवमोंकारंपरमेश्वरम्। त्रिमात्रंत्र्यक्षरंदिव्यंत्रिपदंचत्रिदैवकम् ॥ त्र्यक्षरंत्रिगुणाकारं सर्वाक्षरमयंशुभम्। त्र्यणवंप्रणवंहंसंस्रष्टारंपरमेश्वरम् ॥ अनादिनिधनंदेवमप्रमेयंसनातनम्। परंपरतरंबीजंनिर्मलंनिष्कलंशुभम् ॥

वाचन का पाठ करे। तत्पश्चात् प्रतिज्ञा संकल्प करके गणेशजी, नवग्रह षोडश

यजुर्वेद० अध्याय २३ ॥ मन्त्र १९ ॥

ओम्—गणानान्त्वा गणपतिꣳहवामहे प्रियाणान्त्वा प्रियपतिꣳहवामहे निधीनान्त्वा निधिपतिꣳहवामहे वसो मम। आहमजानि गर्भधमात्वमजासिगर्भधम् ॥

शुक्लयजु० अध्याय १६ मन्त्र २५ ॥

ओम्—नमो गणेभ्यो गणपतिभ्यश्च वो नमो नमो व्रातेभ्यो व्रातपतिभ्यश्च वो नमो नमो गृत्सेभ्यो गृत्सपतिभ्यश्च वो नमो नमो विरूपेभ्यो विश्वरूपेभ्यश्च वो नमः ॥

अथ मातृकापूजनम् ॥

गौरी १ पद्मा २ शची ३ मेधा ४ सावित्री ५ विजया ६ जया ७। देवसेना ८ स्वधा ९ स्वाहा १० मातरो ११ लोकमातरः १२ ॥ हृष्टिः १३ पुष्टि १४ स्तथा तुष्टि १५ स्तथात्मकुलदेवता १६ । श्रीकुलदेव्यन्तर्गतगौर्य्यादिषोडशमातृभ्यो नमः ॥ अथ ऋत्विजां वरणम् ॥ यथा चतुर्मुखो ब्रह्मा सर्ववेदधरः प्रभुः। तथा त्वं भव यज्ञेऽस्मिन्ब्रह्माभवद्विजोत्तम ॥ गृहीत्वा तु कराङ्गुष्ठं यजमानः पठेदिदम्। अस्य कर्मणः प्रतिष्ठापनार्थं त्वं मे ब्रह्मा भव(अहं भवामि इति ब्रह्मा ब्रूयात्)

मातृका और कलश का पूजन करे। गणेशादि का पूजन सूत्र में नहीं है। त-

अथ कलशपूजनम् ॥

शुक्लयजु० अध्याय ४ मन्त्र० ३६

ओम्-व्वरुणस्योत्तम्भनमसि व्वरुणस्य स्कम्भसर्ज्जनीस्थो व्वरुणस्यऽऋतसदन्यसि वरुणस्यऽऋतसदनमसि व्वरुणस्यऽऋतसदनमासीद ॥

अथ नवग्रहपूजा ॥

शु० यजु० अध्याय ३४ मं० ३१

ओं-आकृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतम्मर्त्यञ्च । हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन् ॥ ओं सूर्यायनमः ।

इति सूर्यं पूजयेत् ॥ शुक्ल यजु० अध्याय १० मन्त्र १८

ओम्-इमंदेवाऽअसपत्नथंसुवद्ध्म्महतेक्षत्रायमहतेज्यैष्ठ्यायमहतेजानराज्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय । इममुष्यपुत्रममुष्यैपुत्रमस्यैविशऽएषवोमीराजासोमोऽस्माकम्ब्राह्मणानाथंराजा ॥ ओं सोमाय नमः । इति पूजयेत् ॥

शुक्लयजु० अध्याय ३ मन्त्र १२

ओम्-अग्निर्म्मूर्द्धादिवःककुत्-पतिः पृ-

थिव्याऽअयम्। अपाꣳरेताꣳसि जिन्वति ॥
ओं अङ्गारकाय नमः। इति पूजयेत् ॥

यजु० अध्याय १५ मन्त्र ३

ओम्-उद्बुध्यस्वाग्नेप्रतिजागृहि,त्वमि-
ष्टापूर्त्तेसꣳसृजेथामयञ्च। अस्मिन्त्सधस्थेऽ-
ध्युत्तरस्मि,न्विश्वेदेवायजमानश्चसीदत॥
ओंबुधायनमः। इति पूजयेत्। यजु० अध्याय २६ मन्त्र ३
ओम्-बृहस्पतेऽअतियदर्य्योऽअर्हाद्द्युमद्वि-
भातिक्रतुमज्जनेषु। यद्दीदयच्छवसऽऋतप्रजात
तदस्मासुद्रविणन्धेहिचित्रम् ॥
ओं वृहस्पतये नमः। इति पूजयेत्। यजु० अध्याय १९ मन्त्र ७५
ओं-अन्नात्परिस्रुतोरसम्ब्रह्मणाव्यपिवत्क्ष-
त्रम्पयः सोमम्प्रजापतिः। ऋतेन सत्यमिन्द्रि
यंविपानꣳ शुक्रमन्धसइन्द्रस्येन्द्रियमिद-
म्पयोऽमृतम्मधु ॥ ६ ॥ ओं शुक्राय नमः।

इति पूजयेत्। यजु० अध्याय ३६ मंत्र १२

ओम्-शन्नो देवीरभिष्टयऽआपो भव-
न्तु पीतये। शंय्योरभिस्रवन्तु नः ॥ ओं श-
नैश्चराय नमः ॥ इति पूजयेत् ॥

यजु० अध्याय २७ मंत्र ३९ ॥

ओम्–कया नश्चित्र आभुवदूती सदावृधः सखा । कया शचिष्ठया वृता ॥ ओं राहवे नमः ॥ इति पूजयेत् ॥

यजु० अध्याय १५ मंत्र ३ ॥

ओम्–केतुङ्कृण्वन्नकेतवे, पेशो मर्य्याऽअपेशसे। समुषद्भिरजायथाः ॥ ओं केतवे नमः॥

इति पूजयेत् ॥

ततः साधुभवानास्तामिति प्रजापतिर्ऋषिर्ब्रह्मा देवता यजुश्छन्दो वरार्चने विनियोगः। ओं साधुभवानास्तामर्चयिष्यामो भवन्तम्। इति ब्रूयात्। ओं अर्चयेति वरेणोक्ते वरोपवेशनार्थं शुद्धमासनं दत्त्वा कन्यादाता विष्टरमादाय ओं विष्टरोविष्टरोविष्टरइत्यन्येनोक्ते ओं विष्टरः प्रतिगृह्यतामिति दाता वदेत्। ओं विष्टरं प्रतिगृह्णामीत्यभिधाय वरो विष्टरं गृहीत्वा–वर्ष्मोऽस्मीत्याथर्वणऋषिर्विष्टरो देवताऽनुष्टुप्छन्दः। उपवेशने विनियोगः ॥

ओं वर्ष्मोऽस्मि समानानामुद्यतामिवसूर्यः । इमं तमभितिष्ठामि यो मा कश्चाभिदासति॥

इनन्तर कन्या दाता (साधुभवानास्ता०) इत्यादि वाक्य पढ़े। वर कहे-(अर्चय) तब वर को बैठने के लिये शुद्ध आसन देवे। यजमान हाथ में विष्टर लेवे तथा अन्य कोई पुरुष (विष्टरो विष्टरो विष्टरः) कहे तब कन्या दाता कहे (ओं विष्टरः प्रतिगृह्यताम्) तब (ओं विष्टरं गृह्णामि) वाक्य कह कर वर विष्टर को लेता हूं ऐसा कह विष्टर को लेकर (वर्ष्मोऽस्मि०) मन्त्र से आसन के ऊपर

दोऽस्मि इत्यनेन आसने उत्तराग्रविष्टरोपरि वर उपशाति। ओं पाद्यं पाद्यं पाद्यमित्यन्येनोक्ते ओं पाद्यं प्रतिगृह्यतामिति दाता वदेत्। ओं पाद्यं प्रतिगृह्णामीत्यभिधाय वरः-

ओं विराजो दोहोऽसि विराजो दोहमशीय मयि पाद्यायै विराजो दोहः॥

इति दक्षिणं चरणं प्रक्षाल्यानेनैव क्रमेण मन्त्रेण च वामचरणप्रक्षालनम्। ततः पूर्ववद्विष्टरान्तरं गृहीत्वा चरणयोरधस्तात् उत्तराग्रं वरः कुर्यात्। ततो दूर्वाक्षतफलपुष्पचन्दनयुतार्घपात्रं गृहीत्वा यजमानः-ओं अर्घइत्यादिविष्णुः ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दो विष्णुर्देवता अर्घदाने विनियोगः। ओं अर्घोऽर्घोऽर्घइत्युक्तेऽन्येन, ओमर्घः प्रतिगृह्यतामिति दाता वदेत्। ओं अर्घं प्रतिगृह्णामीत्यभिधाय वरो यजमानहस्तादर्घपत्रं गृहीत्वा। आपःस्थइत्यादिमन्त्रस्य सिन्धुद्वीपऋषिरनु-

---

उत्तराग्र विष्टर को धर के उस पर वर बैठे। तदनन्तर अन्य कोई यजमान का पुरुष (पाद्यं० ३) ऐसा तीन बार कहे तब कन्या दाता कहे (पाद्यं प्रतिगृह्यताम्) तब वर (पाद्यं प्रतिगृह्णामि) वाक्य को कह कर (ओम्-विराजो०) मन्त्र पढ के पाद्यजल से [ब्राह्मण हो तो] प्रथम दहिने पग का प्रक्षालन कर के पश्चात् द्वितीय बार इसी उक्त मन्त्र को पढ के वाम पाद का प्रक्षालन करे। यदि क्षत्रिय वा वैश्यादि हो तो प्रथम वामपाद को धोकर पश्चात् दहिना पग धोवे। तदनन्तर पूर्व के तुल्य द्वितीय विष्टर को लेकर वर दोनों पगो के नीचे विष्टर को उत्तराग्र दबा लेवे। तदनन्तर दूब, अक्षत-चहैंगो, फल, पुष्प और चन्दन सहित अर्घपात्र को कन्यादाता स्वयं हाथ में लेकर (ओम्-अर्घोऽर्घोऽर्घः) ऐसा अन्य किसी के कहने पर (अर्घ प्रतिगृह्यताम्) ऐसा कहे और वर (ओम् अर्घं प्रतिगृह्णामि) ऐसा कह कर यजमान के हाथ से अर्घपात्र को दहिने हाथ

ष्टुप्छन्दोऽर्घाक्षतादिधारणे विनियोगः। ओं आपः स्थ युष्माभिः सर्वान्कामानवाप्नवानि। इति शिरसि किञ्चिदक्षतादिकं धृत्वा समुद्रं वइत्यादिमंत्रस्याथर्वणऋषिर्बृहतीछन्दो वरुणो देवताऽर्घजलप्रवाहे विनियोगः। ओं समुद्रं वः प्रहिणोमि स्वां योनिमभिगच्छत। अरिष्टाऽस्माकं वीरा मापरासेचिमत्पयः ॥४॥ इत्यर्घपात्रस्थ जलमैशान्यां त्यजन् पठेत्। ततो यजमानआचमनीयमादाय आचमनीयमाचमनीयमाचमनीयमित्यन्येनोक्ते–ओम्–आचमनीयं प्रतिगृह्यतामिति दाता वदेत्। ओम्–आचमनीयं प्रतिगृह्णामीत्यभिधाय वरो यजमानहस्तादाचमनीयं गृहीत्वा–आमागन्निति परमेष्ठीऋषिर्बृहतीछन्द आपो देवता अपामुपस्पर्शने विनियोगः ॥ ओम्–आमागन्यशसा सꣳसृज वर्चसा। तम्मा कुरु प्रियं प्रजानामधिपतिं पशूनामरिष्टिं तनूनाम् ॥ इत्यनेन सकृदाचामेत्। द्विस्तूष्णीमाचामेत्। ततो यजमानः कांस्यपात्रस्थदधिमधुघृतानि समादायान्येन कांस्यपात्रेणापिधाय कराभ्यामादाय। मधुपर्केति मधुच्छन्दऋषिर्बृहतीछन्दो मधुभग

से लेकर (ओम्–आपस्थ०) मन्त्र से अर्घपात्र में से अपने शिर में थोड़ा अक्षत पुष्पादि धर के अर्घपात्रस्थ जल को ईशान दिशा में छोड़ता हुआ (ओं समुद्रं वः०) मन्त्र पढ़े। तदनन्तर यजमान अपने हाथ में आचमनीय जल लेकर (आचमनीयं ३) ऐसा तीन वार अन्य के कहने पर (आचमनीयं प्रतिगृह्यताम्) ऐसा कहे। और वर (आचमनीयं प्रतिगृह्णामि) ऐसा कह कर यजमान के हाथ से आचमनीय पात्र लेके (ओमामागन्य०) मन्त्र पढ़ के एक वार आचमन कर दो वार विना मन्त्र पढ़े आचमन करे। तदनन्तर कन्या दाता यजमान कांसे के कटोरा में दही शहत और घृत को लेकर अन्य द्वितीय कटोरा

देवता मधुपर्कदाने विनियोगः ॥ ओम्–मधुपर्को मधुपर्को मधुपर्क इत्यन्येनोक्ते-ओम्-मधुपर्कः प्रतिगृह्यतामिति दातावदेत्। ओम्–मधुपर्कं प्रतिगृह्णामीत्यभिधायैव वरः। ओम्-मित्रस्येति प्रजापतिर्ऋषिः पङ्क्तिश्छन्दो मित्रो देवता मधुपर्कदर्शने विनियोगः। ओम्–मित्रस्य त्वा चक्षुषा प्रतीक्षे। इति दातृकरस्थमेव मधुपर्कं निरीक्ष्य देवस्यत्वेति ब्रह्मा-ऋषिर्गायत्रीछन्दः सविता देवता मधुपर्कग्रहणे विनियोगः॥

यजुर्वे० अ० ६ मं० १

ओम्–देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां प्रतिगृह्णामि ॥

इत्यभिधाय वरो मधुपर्कं गृहीत्वा वामहस्ते कृत्वा-ओम्–नमः श्यावेति प्रजापतिर्ऋषिर्गायत्री छन्दः सविता देवता मधुपर्कालोडने विनियोगः॥ ओम्–नमः श्यावास्यायान्नशने यत्त आविद्धं तत्ते निष्कृन्तामि। इत्यनामिकया त्रिःप्रदक्षिणमालोड्य अनामिकाङ्गुष्ठाभ्यां भूमौ किञ्चिन्निक्षिप्य पुनस्तथैव द्विःप्रत्येकं निक्षिपेत्॥ तत आ

से दांप के दोनों हाथ में लेकर (ओंमधुपर्कोमधुपर्कोमधुपर्कः) ऐसा अन्य के कहने पर (ओं मधुपर्कः प्रतिगृह्यताम्) कहे। और वर (ओं मधुपर्कं प्रतिगृह्णामि) ऐसा कह कर (ओंमित्रस्य०) मन्त्र पढ़ के यजमान के हाथ में ही मधुपर्क को देख कर (ओं देवस्यत्वा०) मन्त्र पढ़ के यजमान के हाथ से मधुपर्कपात्र को लेकर वाम हाथ में पकड़ के (ओं नमः श्यावा०) मन्त्र पढ़ के दहिने हाथ की अनामिका अङ्गुलि से तीन बार प्रदक्षिण क्रम से मधुपर्क को मिलावे। तदनन्तर मधुपर्क में से अनामिका और अङ्गुष्ठ द्वारा थोड़ा अंश लेकर भूमि में छिटक कर फिर भी दो बार इसी प्रकार थोड़ा २ छिटकावे। तदनन्तर व्यवहारानुसार थोड़ा

चारान्मधुपर्कं किञ्चित्कन्यायै द्रष्टुं दद्यात् ॥ ओम्—यन्मधुनइत्यस्य कौत्स ऋषिर्जगती छन्दो मधुपर्को देवता मधुपर्कप्राशने विनियोगः। ओम्—यन्मधुनो मधव्यं परमꣳरूपमन्नाद्यम्॥ तेनाऽहं मधुनो मधव्येन परमेण रूपेणान्नाद्येन परमो मधव्योऽन्नादोऽसानि ॥ २ ॥ इत्यनेन वारत्रय मधुपर्कप्राशनं प्रतिप्राशनान्ते चैतन्मन्त्रपाठ.। ततो मधुपर्कशेषमसंचरे देशे धारयेत् ॥

ततस्त्रिराचामेद्वरः। वाङ्मआस्ये अस्तु। नसोर्मे प्राणोऽस्तु। अक्ष्णोर्मे चक्षुरस्तु। कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु। बाह्वोर्मे बलमस्तु। ऊर्वोर्मे ओजोऽस्तु। अरिष्टानि मेऽङ्गानि तनूस्तन्वा मे सह सन्तु। इति प्रत्येकं सर्वगात्राणि संस्पृशेत्। ततो वेदिकायां तुषकेशशर्कराभस्मादिरहितां चतुरस्रभूमिं कुशैः परिसमुह्य तानैशान्यां परित्यज्य गोमयोदकेनोपलिप्य स्फयेन स्रुवेण वा प्रागग्रप्रादेशमितमुत्तरोत्तरक्रमेण

मधुपर्क कन्या को देखने के लिये देवे। तदनन्तर (ओ यन्मधुनो०) मन्त्र को तीन बार पढ २ कर तीन बार थोडा २ मधुपर्क खावे। और शेष बचे मधुपर्क को जहा किसी की निकल पैठ न हो ऐसे स्थान में छोड देवे। तदनन्तर वर तीन बार आचमन करके (वाङ्म०) से मुख का (नसोर्मे०) से दोनो नासिका के छिद्रो का (अक्ष्णोर्मे०) से दोनो आखो का (कर्णयोर्मे०) से दोनो कानो का प्रथम दहिने तदनन्तर वाम का (बाह्वोर्मे०) से दोनो भुजा का (ऊर्वोर्मे०) से दोनो जाघो का और (अरिष्टानि मे०) से सब अङ्गो का शिर से पग तक स्पर्श करे। तदनन्तर भूसी केश कंकड और भस्मादि रहित वेदी में चतुष्कोण भूमि का कुशो से परिसमूहन कर कुशो को ईशानकोण में छोड कर गोबर और जल से वेदि भूमि का लेपन कर स्फ्य वा स्रुवा से प्रागग्र प्रादेशपरिमिति उत्तर २ क्रम से तीन रेखा करके रेखाओ के क्रम से अनामिका और अङ्गुष्ठ द्वारा

त्रिरुल्लिख्योल्लेखनक्रमेणाऽनामिकाङ्गुष्ठाभ्यां मृदमुद्धृत्य जलेनाभ्युक्ष्य तत्र तूष्णीं कांस्यपात्रस्थं मृत्तिकापात्रस्थं वा विहितं वन्हिं प्राङ्मुखः प्रत्यङ्मुखमुपसमाधाय तद्रक्षार्थं कञ्चिन्नियुज्य कौतुकागाराद्वरः कन्यामानीय मण्डपप्रवेश्य अथैनां वासः परिधापयति ॥

ओंजरांगच्छेति मंत्रस्य प्रजापतिर्ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दस्तन्तवी देवता वस्त्रपरिधाने विनियोगः ॥ ओं जरां गच्छ परिधत्स्व वासो भवा कृष्टीनामभिशस्तिपावा । शतं च जीव शरदः सुवर्चा रयिञ्च पुत्राननुसंव्ययस्वायुष्मतीदं परिधत्स्व वासः ॥ इतिमंत्रेण परिधानवस्त्रंपरिधापयेद्वरः ॥ अथोत्तरीयं वासः समादाय वरोऽग्रिममंत्रेण परिधापयेत् । याऽअकृन्तन्नित्यादि मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिर्जगती छन्दो विधाऽयो देवता वस्त्रधारणे विनियोगः ॥ ओंयाअकृन्तन्नवयं याअतन्वत याश्च देवीस्तन्तूनभितरततन्थ । तात्वादेवीर्जरसे संव्ययस्वायुष्मतीदं परिधत्स्व वासः ॥ इति मन्त्रेण अहतवासो धौतं वा सौत्रेणाच्छादयीतेति श्रुत्यनुसारेण वरोप्येताहृशवाससी अत्र परिधत्ते परिधास्यैइत्यादिमन्त्राभ्याम् ॥

मट्टी को रेखाओं में उठाकर फेंक दे पश्चात् जल से वेदि का अभ्युक्षण कर विधान किये अग्नि को कांसे वा मट्टी के पात्र में लाके पूर्वाभिमुख हो कर अग्नि को सामने रख कर उसके न बुझने के लिये थोड़ी समिधा अग्नि पर धर के कौतुकागार से वर कन्या को लाकर मण्डप में बैठाकर कन्या को वस्त्र पहनावे (ओं जरां गच्छ०) मन्त्र को पढ़कर अधोवस्त्र पहरने के लिये कन्या को देवे तदनन्तर ऊपर ओढने का वस्त्र ओढनी वा चद्दर वर हाथ में लेकर (ओं याअकृन्तन्०) मन्त्र पढ़ कर कन्या को ओढने के लिये देवे । ये वस्त्र नये स्वयं धोये हो वि-

परिधास्यै इत्यादिमन्त्रस्याथर्वणऋषिस्त्रिष्टुपछन्दः। तन्तवो देवता वासःपरिधाने विनियोगः। ओम्-परिधास्यै यशो धास्यै दीर्घायुत्वाय जरदष्टिरस्मि। शतञ्च जीवामि शरदः पुरूचीरायस्पोषमभिसंव्ययिष्ये ॥ इति पठित्वा वरः परिधत्ते (अथोत्तरीयमाच्छादयतीति सूत्रम्) ओम्-यशसे-त्यादिमन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिर्जगतीछन्दो विधात्र्यो देवता वासोधारणे विनियोगः ॥ ओम्-यशसा मा द्यावापृथिवी यशसेन्द्रावृहस्पती। यशो भगश्च मां विदद्यशो मा प्रतिपद्यताम्। इति पठित्वोत्तरीयं परिधत्ते ॥ ततः कन्याया वरस्य च द्विराचमनम्। ततः कन्याप्रदेन "परस्परं समञ्जेथामिति प्रेषितयोः परस्परं सम्मुखीकरणम् ॥ समञ्जन्त्विति मन्त्रस्य आथर्वणऋषिरनुष्टुपछन्दो विश्वेदेवा देवता मैत्रीकरणे विनियोगः ॥ ओम्-समञ्जन्तु विश्वेदेवाः समापो हृदयानि नौ॥ सम्मातरिश्वा संधाता समुदेष्ट्री दधातु नौ ॥ इति वरः पठेत्॥ ततः कन्याप्रदकर्तृकग्रन्थिबन्धनम् ॥ हस्तलेपनं शाखोच्चारणम् ॥ अथ कन्यादानम्।

कन्यादाता शंखस्थदूर्वाक्षतफलपुष्पचन्दनजलान्यादाय।

न्तु धोबी के धोये न होवें। तदनन्तर (परिधास्यै०) मन्त्र पढ़ के नयो स्वयं धोयी शुद्ध धोती वर पहिने और (ओम्-यशसा०) मन्त्र पढ़के शुद्ध दुपट्टा वर ऊपरके भाग में ओढ़े वा अंगरखा पहने तदनन्तर कन्या वर दोनों दो २ आचमन करें। तदनन्तर कन्या दाता कहे कि (परस्परं समञ्जेथाम्) ऐसा कहकर कन्या वर को सम्मुख करे और उस समय (ओं समञ्जन्तु०) मन्त्र को वर पढ़े। इसी समय कन्यादाता दोनों का ग्रन्थिबन्धन कर कन्या के हाथों में हल्दी लगावे और इसी समय शाखोच्चारण करे। अथ कन्या दान-कन्या दान करने

अथ कन्याप्रदः—जामातृदक्षिणकरोपरि कन्यादक्षिणकरं निधाय । दाताऽहं वरुणो राजाद्रव्यमादित्यदैवतम् । विप्रोऽसौ विष्णुरूपेण प्रतिगृह्णात्वयं विधिः । इति दाता पठेत् । ततो गोत्रोच्चारणं च कुर्यात् ।

श्रीं श्रीमत्पंकजविष्टरो हरिहरौ वायुर्महेन्द्रो नलश्चन्द्रोभास्करवित्तपालवरुणाः प्रेताधिपाद्याग्रहाः । प्रद्युम्नो नलकूवरौ सुरगजश्चिंतामणिः कौस्तुभः स्वामीशक्तिधरश्च लाङ्गलधरःकुर्वन्तु वो मङ्गलम् ॥१॥

अमुकगोत्रस्य अमुकप्रवरस्यअमुकवेदिनोऽमुकशाखिनोऽमुकसूत्रिणोऽमुकशर्मणःप्रपौत्राय । अमुकगोत्रस्य यथोक्तप्रवरस्याऽमुकवेदिनोऽमुकशाखिनोऽमुकसूत्रिणोऽमुकशर्म्मणः पौत्राय २ अमुकगोत्रस्य यथोक्तप्रवरस्याऽमुकवेदिनोऽमुकशाखिनोऽमुकसूत्रिणोऽमुकशर्म्मणः पुत्राय ॥ ३ ॥ अमुकगोत्रस्य यथोक्तप्रवरस्याऽमुकवेदिनोऽमुकशाखिनोऽमुकसूत्रिणोऽमुकशर्मणः प्रपौत्रीं १ अमुकगोत्रस्य यथोक्तप्रवरस्य अमुकवेदिनोऽमुकशाखिनोऽमुकसूत्रिणोऽमुकशर्म्मणः पौत्रीं२ अमुकगोत्रस्यामुकप्रवरस्याऽमुकवेदिनोऽमुकशाखिनोऽमुकसूत्रिणोऽमुकशर्मणः पुत्रीं ३ गौरीश्रीकुलदेवताचसुभगाभूमिः प्रपूर्णाशुभा सावित्री च सरस्वती च सुरभिःसत्यव्रतारुन्धती । स्वाहा जाम्बुवती च रुक्मभगिनी दुःस्वप्नविध्वंसिनी वेलाचांबुनिधेःसमीनमकराः कुर्वन्तुवोमङ्गलम् ॥ २ ॥

थाली पुष्प शंख में दूब अक्षत फल पुष्प चन्दन और जल को लेकर वर के दहिने हाथ पर कन्या का दहिना हाथ धरके (दाताऽहं०) श्लोक पढे । ऊपर लिखे अनुसार यहां गोत्रोच्चारण करे। यदि वर ब्राह्मण न हो किन्तु क्षत्रियादि

अमुकगोत्रस्यामुकप्रवरस्यामुकवेदिनोऽमुकशाखिनोऽमुकसूत्रिणोऽमुकशर्मणः प्रपौत्राय । अमुकगोत्रस्य यथोक्तप्रवरस्याऽमुकवेदिनोऽमुकशाखिनोऽमुकसूत्रिणोऽमुकशर्म्मणः पौत्राय २ अमुकगोत्रस्य यथोक्तप्रवरस्याऽमुकवेदिनोऽमुकशाखिनोऽमुकसूत्रिणोऽमुकशर्म्मणः पुत्राय ॥३॥ अमुकगोत्रस्य यथोक्तप्रवरस्याऽमुकवेदिनोऽमुकशाखिनोऽमुकसूत्रिणोऽमुकशर्मणः प्रपौत्रीम् १ अमुगोत्रस्य यथोक्तप्रवरस्य अमुकवेदिनोऽमुकशाखिनोऽमुकसूत्रिणोऽमुकशर्म्मणः पौत्रीम् २ अमुकगोत्रस्यामुकप्रवरस्याऽमुकवेदिनोऽमुकशाखिनोऽमुकसूत्रिणोऽमुकशर्मणः पुत्रीम् ॥३॥ गंगा सिंधु सरस्वती च यमुना गोदावरी नर्मदा, कावेरी सरयू महेन्द्रतनया चर्मण्वती वेदिका ॥ क्षिप्रा वेत्रवती महासुरनदी ख्याता च या गंडिकी, पुण्याःपुण्यजलैःसमुद्रसहिताःकुर्वन्तुवोमङ्गलम् ॥ ३ ॥ अमुकगोत्रस्य यथोक्तप्रवरस्यामुकवेदिनोऽमुकशाखिनोऽमुकसूत्रिणोऽमुकशर्मणः प्रपौत्राय । अमुकगोत्रस्य यथोक्तप्रवरस्याऽमुकवेदिनोऽमुकशाखिनोऽमुकसूत्रिणोऽमकशर्मणः पौत्राय२ अमुकगोत्रस्य यथोक्तप्रवरस्याऽमुकवेदिनोऽमुकशाखिनोऽमकसूत्रिणोऽमुकशर्मणः पुत्राय ॥ ३ ॥ अमुकगोत्रस्य यथोक्तप्रवरस्याऽमुकवेदिनोऽमुकशाखिनोऽमुकसूत्रिणोऽमुकशर्मणः प्रपौत्रीम् १ अमुकगोत्रस्य यथोक्तप्रवरस्य अमुकवेदिनोऽमुकशाखिनोऽमुकसूत्रिणोऽमुकशर्मणः पौत्रीम् ॥ २ ॥ अमुकगोत्रस्य यथोक्तप्रवरस्याऽमुकवेदिनोऽमुकशाखिनोऽमुकसूत्रिणोऽमुकशर्मणः पुत्रीम् ॥ ३॥ लक्ष्मीः कौस्तुभपारि-

जातकसुराधन्वन्तरिश्चन्द्रमा,धेनुःकामदुघा सुरेश्वरगजो रंभा च देवाङ्गना ॥ अश्वः सप्तमुखो विषं हरिधनुः शङ्खोविषं चाम्बुधेरत्नानीति चतुर्दश प्रतिदिनं कुर्वन्तु वो मङ्गलम् ॥४॥ ब्रह्मा वेदपतिः शिवः पशुपतिः सूर्योग्रहाणांपतिः शक्रोदेवपतिर्हविर्हुतपतिःस्कन्दश्चसेनापतिः। विष्णुर्यज्ञपतिर्यमोरधःपतिःशक्तिःपतीनांपतिः सर्वेतेपतयः सुमेरुसहिताः कुर्वन्तु वो मङ्गलम् ॥ ५ ॥ इति सर्वोपयोगिगोत्रोच्चारणम् ॥

अथ कन्यासंकल्पविधिः ॥ हरिः--ओम् ॥ विष्णुर्विष्णुर्विष्णुःपुनातु अद्यतत्सद्ब्रह्मअथानन्तवीर्यस्य श्रीमदादिनारायणस्याऽचिन्त्यापरिमिताऽनन्तशक्तिसमन्वितस्य स्वकीयमूलप्रकृतिपरमशक्त्या क्रीडमानस्य सच्चिदानन्दसन्दोहस्वरूपे स्वात्मनि सर्वाधिष्ठाने स्वाज्ञानकल्पितानां महाजलौघमध्ये परिभ्रम्यमाणानामनेककोटिब्रह्माण्डानामेकतमेऽस्मिन्ब्रह्माण्डेऽव्यक्तमहदहङ्कारपृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशादिभिर्दशगुणोत्तरैरावरणैरावृते आधारशक्तिश्रीकूर्मवराहधर्मानन्ताष्टदिग्गजादिप्रतिष्ठिते ऐरावतपुण्डरीकवामनकुमुदाऽञ्जनपुष्पदन्तसार्वभौमसुप्रतीकाख्याष्टदिग्दन्तिशुण्डादण्डोत्तम्भितैतद्ब्रह्माण्डखण्डयोरन्तर्गतभूर्लोकभुवर्लोकस्वर्लोकमहर्लोकजनलोकतपोलोकसत्यलोकाख्याना सर्वज्ञ सर्वशक्तिसमन्वितसर्वोत्तमसर्वाधिपश्रीचतुर्मुखप्रभृतिस्वस्वलोकाधिष्ठितानामधोभागे फणिराजस्य शेषस्य सहस्रफणामण्डलैकफणोपरि सर्षपैकवणायमानमहीमण्डलान्तर्गतातलवितलसुतलतलातलरसातलमहातलपातालानां

स्वस्वाधिष्ठात्रधिष्ठितानामुपरितने सुमेरुमन्दिरमन्दराचलनिषधहिमगिरिशृङ्गवद्धेमकूटदुर्दुरपारियात्रशैलमहाशैलमहेन्द्रसह्याद्रिमलयाचलविन्ध्यर्ष्यमूकचित्रकूटमैनाकमानसोत्तरत्रिकूटोदयाचलास्ताचलपर्यन्तानेकाभिधानाद्रिगणप्रतिष्ठितायां जम्बूप्लक्षशाल्मलीकुशक्रौञ्चशाकपुष्कराख्यसप्तद्वीपवत्यां लवणेक्षुसुरासर्पिर्दधिक्षीरशुद्धोदकाख्यसप्तसागरसमन्वितायां समस्तभूरेखायां कमलकदम्बगोलकाकारायां वर्तमाने कुवलयकोशान्तर्गतदलवद्विराजमाने उत्तरकुरुहिरण्मयरम्यकभद्राश्वकेतुमालेलावृतहरिवर्षकिम्पुरुषभारताख्यनवखण्डवति जम्बुद्वीपे सर्वेभ्योऽप्यतिरिक्तसारवति देवादिभिरप्यभीष्टसुकृतक्षेत्रभूतहेतुनाभिलषिततमे अङ्गवङ्गकलिङ्गकालिङ्गकाम्बोजसौवीरसौराष्ट्रमहाराष्ट्रवङ्गालोत्कलमगधमालवनेपालकेरलचोरलगौडमलपाञ्चालसिंहलमत्स्यद्रविडद्राविडकर्णाटराटवशूरसेनकौङ्कणटौङ्कणपाण्ड्यपुलिन्ध्यान्ध्यद्रौणदशार्णविदेहविदर्भमैथिलकेकयकोशलकुन्तलमैन्ध्रवजावलसार्वसिन्धुशालभद्रमध्यदेशपर्वतकाश्मीरपुष्टाहारसिन्धुपारसीकगान्धारवाह्लीक (हूण) प्रभृतिबहुविधदेशविशेषसंपन्ने दण्डकारण्यमहारण्याद्वैतारण्यप्रभृत्यनेकारण्यवति श्रीगङ्गायमुनासरस्वतीगोदावरीनन्दालकनन्दामन्दाकिनीकौशिकीनर्मदासरयूकर्मनाशाचर्मण्वतीक्षिप्रावेत्रवतीकावेरीफल्गुमार्कण्डेयरामगङ्गाशतद्रुविपाशैरावतीचन्द्रभागावितस्तासिन्धुदृषद्वतीप्रभृत्यनेकनदनदीवति कु-

स्यां दिशि वारिपूर्णदृढकलशमादाय ऊर्ध्वं तिष्ठतो मौनिनः पुरुषस्य स्कन्धे अभिषेकपर्यन्तं धारयेत् । "ततः परस्परं समीक्षेथाम्" । इति कन्याप्रदप्रैषानन्तरम्–

ओम्–अघोरचक्षुरपतिघ्न्येधि शिवा पशुभ्यः सुमनाः सुवर्चाः । वीरसूर्देवकामा स्योना शन्नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ॥

सोमः प्रथमो विविदे गन्धर्वो विविद उत्तरः । तृतीयो अग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः । सोमो ददद्गन्धर्वाय गन्धर्वो ददद्ग्नये । रयिं च पुत्रांश्चादादग्निर्मह्यमथो इमाम् ॥ सा नः पूषा शिवतमामैरय सा न ऊरू उशती विहर । यस्यामुशन्तः प्रहराम शेपं यस्यामु कामा बहवो निविष्ट्यै ॥

इति वरपठितमन्त्रान्ते परस्परं निरीक्षणम् ।

क्षेपक

ऋग्वेद मण्डल १० सू० ८५ मं० २५ ॥

इमांत्वमिन्द्रमीढ्वःसुपुत्रां सुभगांकृणु । दशास्यांपुत्रानाधेहिपतिमेकादशंकृधि ॥

पुरुष कन्धे पर वर के आगे होने वाले कन्या के अभिषेक पर्यन्त मौन खड़ा रहे । वा रक्षा करे । [दृढ पुरुष कहने का कुम्भ की रक्षा में तात्पर्य है] तदनन्तर कन्या दाता कहे कि (परस्पर समीक्षेथाम्) तब (ओम्–अघोरच०) इत्यादि मन्त्रों को वर पढ़े मन्त्रों के अन्त में कन्या वर एक दूसरे को देखें । तब अग्नि की

ततोऽग्निं प्रदक्षिणीकृत्य पश्चादग्नेरहतवस्त्रवेष्टितं तृणपूलकं कटं वा निवेश्य तदुपरि दक्षिणचरणं दत्त्वा वधूं दक्षिणतः कृत्वा तामुपवेश्य पुष्पचन्दनताम्बूलवस्त्राण्यादाय—ओं तत्सदद्यकर्त्तव्यविवाहहोमकर्मणि कृताऽकृतावेक्षणरूप ब्रह्मकर्म कर्तुममुकगोत्रममुकशर्माणं ब्राह्मणमेभिः पुष्पचन्दनताम्बूलवासोभिर्ब्रह्मत्वेन त्वामहं वृणे इति ब्रह्माणं वृणुयात् ॥ वृतोऽस्मीति प्रतिवचनम् ॥ यथाविहितं कर्म्म कुर्विति वरेणोक्ते करवाणीति ब्रह्मा ब्रूयात्। ततो वरोऽग्ने र्दक्षिणतो ब्रह्माणमग्निप्रदक्षिणक्रमेणानीय अत्र त्वं मे ब्रह्मा भवेत्यभिधाय कल्पितासने समुपवेशयेत् ॥

ततः प्रणीतापात्रं पुरतः कृत्वा वारिणा परिपूर्य कुशैराच्छाद्य ब्रह्मणो मुखमवलोक्य अग्नेरुत्तरतः कुशोपरि निदध्यात्। ततः परिस्तरणं बर्हिषश्चतुर्थभागमादाय आग्नेया-

---

प्रदक्षिणा करके अग्नि से पश्चिम ओर सजे नये वस्त्र से लपेटे तृणोंके पूला वा चटाई को रखके उसके ऊपर दहिना पग धरके कन्या को अपने से दहिनी ओर करके बैठा देवे और वर स्वयं बैठ जावे । तब ब्रह्मवरणादि काम करे। पुष्प चन्दन ताम्बूल और वस्त्रों को लेकर (ओमद्य०) इत्यादि वाक्य पढके यजमान वर ब्रह्मा का वरण करे और पुष्पादि ब्रह्मा के हाथ में देवे। ब्रह्मा पुष्पादि को लेकर (वृतोऽस्मि) कहे । तब (यथावि०) यजमान कहे और ब्रह्मा (करवाणि०) कहे । तब अग्नि से दक्षिण में शुद्ध आसन चौकी आदि बिछाकर उस पर पूर्व को जिन का अग्रभाग हो ऐसे कुश बिछाकर ब्रह्माको अग्नि की प्रदक्षिणा कराके (अस्मिन् कर्मणि त्वं मे ब्रह्मा भव) इस कर्म में तुम मेरे ब्रह्मा हो ऐसा कहकर ब्रह्मा के (भवानि) कहने पर उस आसन पर ब्रह्मा को उत्तराभिमुख बैठाकर प्रणीतापात्र को सामने रखके जलसे भरके कुशों से आच्छादन कर ब्रह्मा का मुख अवलोकन करके अग्निसे उत्तर कुशोपर प्रणीतापात्र को प्रागग्र रक्खे ।

दीशानान्तं ब्रह्मणोऽग्निपर्यन्तं नैर्ऋत्याद्वायव्यान्तमग्नितः प्रणीतापर्यन्तं ततोऽग्नेरुत्तरतः पश्चिमदिशि पवित्रच्छेदनार्थं कुशत्रयं पवित्रकरणार्थं साग्रमनन्तर्गर्भं कुशपत्रद्वयं प्रोक्षणी पात्रं आज्यस्थाली संमार्ज्जनार्थं कुशत्रयं समिधस्तिस्रः स्रुव आज्यं पूर्णपात्रं पूर्वपूर्वदिशि क्रमेणासादनीयम् ॥

अथ तस्यामेव दिशि असाधारणवस्तून्युपकल्पनोयानि तत्र शमीपलाशमिश्रा लाजाः, दृषदुपलं कुमारीभ्राता दृढपुरुषः, अन्यदपि तदुपयुक्तमालेपनादि द्रव्यम् ॥ ततः पवित्रच्छेदनकुशैः पवित्रे छित्वा ततः सपवित्रकरेण प्रणीतोदकं त्रिःप्रोक्षणीपात्रे निधाय अनामिकाङ्गुष्ठाभ्यामुत्तराग्रे पवित्रे गृहीत्वा त्रिरुदिङ्गनं प्रणीतोदकेन प्रोक्षणीज-

---

तदनन्तर चार मुट्ठी कुश लेकर अग्नि के सब ओर परिस्तरण करे—एक चौथाई कुश अग्निकोण से ईशानदिशा तक, द्वितीयभाग ब्रह्माके आसन से अग्निपर्यन्त, तृतीयभाग नैर्ऋतकोण से वायुकोण पर्यन्त और चौथाभाग अग्नि से प्रणीता पर्यन्त विछावे। तदनन्तर अग्नि से उत्तर में प्राक्संस्थ पात्रासादन करे। पवित्र छेदनार्थ तीन कुश तथा पवित्रकरणार्थ अग्रभाग सहित जिन के भीतर अन्य कुश न हों ऐसे दो कुश, प्रोक्षणीपात्र, आज्यस्थाली, संमार्जनकुश, उपयमनकुश, ढांक की तीन समिधा, स्रुव, आज्य, चावलों से भरा एक पूर्णपात्र, पवित्र छेदन कुशों से पूर्व पूर्व क्रम से उत्तर को अग्रभाग कर २ इन सब का स्थापन करे। तदनन्तर उसी पूर्व दिशा में विवाह सम्बन्धी विशेष पदार्थों का स्थापन करे। शमीवृक्षोंकर के पत्तोंसेमिश्रितधान की खीलें, शिल, कन्या का भाई, एक पट्टा सहित दृढ पुरुष तथा अन्य भी आलेपनादि उपयोगी पदार्थ धरे। पवित्रछेदनार्थ तीन कुशों से प्रादेशमात्र दो कुशों का छेदन करके पवित्र सहित दहिने हाथ से प्रणीता के जल को तीन बार प्रोक्षणीपात्र में डाल कर अनामिका और अङ्गुष्ठ से पकड़े हुये पवित्रों से उस प्रोक्षणीस्थ जल का उत्पवन करे और प्रणीता के जल से प्रोक्षणीस्थ जल का पवित्रों द्वारा तीन बार अभिषेचन कर

लेन यथासादितवस्तुसेचनम् ॥ ततोऽग्निप्रणीतयोर्मध्ये प्रोक्षणीपात्रनिधानम् ॥ आज्यस्थाल्यामाज्यनिर्वापः । ततोऽधिश्रयणम् । ततो ज्वलत्तृणादिना हविर्वेष्टयित्वा–प्रदक्षिणक्रमेण वह्नौ तत्प्रक्षेपः पर्यग्निकरणम् । ततः स्रुवप्रतपनं कृत्वा सम्मार्जनकुशानामग्रैरन्तरतो मूलैर्बाह्यतः स्रुवं संमृज्य प्रणीतोदकेनाभ्युक्ष्य पुनः प्रतप्य स्रुवं दक्षिणतो निदध्यात् । तत–आज्यस्याग्नेरवतारणं तत आज्ये प्रोक्षणीवदुत्पवनम् ॥ अवेक्ष्य सत्यपद्रव्ये तन्निरसनम् ॥ पुनः प्रोक्षण्युत्पवनम् ॥

ततः उपयमनकुशानादाय उत्तिष्ठन्प्रजापतिं मनसा ध्यात्वा तूष्णीमग्नौ घृताक्तास्तिस्रः समिधः क्षिपेत् ॥ ततउपविश्य सपवित्रप्रोक्षणीजलेन प्रदक्षिणक्रमेणाग्निप-

---

के प्रोक्षणीपात्र के जल से आसादन किये आज्यस्थाली आदि का सेचन करके अग्नि और प्रणीतापात्र के बीच में प्रोक्षणीपात्र को रख देवे। तब आज्यस्थाली में घृतपात्र से घृत गिरावे घृत को अग्नि पर धरके सूखे कुश जलाकर घी के ऊपर प्रदक्षिण भ्रमण कराके अग्नि में जलते कुश फेंक कर स्रुवा को तीन बार अग्नि में तपा के संमार्जन कुशों के अग्रभाग से भीतर की ओर कुशों के मूलभाग से बाहर की ओर स्रुवा को झाड पोंछ शुद्धकर तथा प्रणीता के जल से सेचन करके और फिर तीन बार तपा के अग्नि से दक्षिण की ओर स्रुवा को धर देवे। तत्पश्चात् तपते हुए घी को अग्नि से उतार के उत्तर में धरे। तब तीन बार प्रोक्षणी के तुल्य पवित्रों से घी का उत्पवन करके देखे यदि घृत में कुछ निकृष्ट वस्तु हो तो निकाल कर फेंक देवे और फिर तीन बार प्रोक्षणीपात्र का उत्पवन करे। तदनन्तर उठ कर उपयमनकुशों को वाम हाथ में लेके प्रजापति का मन से ध्यान करके घृत में डुबोई तीन समिधाओं को तूष्णीं बिना मन्त्र पढ़े एक २ कर अग्नि में चढ़ावे। फिर बैठ कर पवित्र सहित प्रोक्षणी के जल को प्रदक्षिणक्रम से ईशानकोण से लेकर उत्तर दिशा तक अग्नि के सब ओर

र्युक्षणं कृत्वा प्रणीतापात्रे पवित्रे निधाय पातितदक्षिणजानुः कुशेन ब्रह्मणान्वारब्धः समिद्धतमेऽग्नौ स्रुवेणाज्याहुतीर्जुहोति ॥ तत्राघाराद्दारभ्य चतुर्दशाहुतिषु तत्तदाहुत्यनन्तरं स्रुवावस्थितहुतशेषघृतस्य प्रोक्षणीपात्रे प्रक्षेपः ॥ ओं प्रजापतये स्वाहा । इति मनसा—इदंप्रजापतये नमम ॥ ओमिन्द्रायस्वाहा—इदमिन्द्राय नमम ॥ इत्याघारौ—ओं अग्नयेस्वाहा—इदमग्नये नमम । ओं सोमायस्वाहा—इदं सोमाय नमम। इत्याज्यभागौ ॥ ओं भूः स्वाहा । इदमग्नये नमम । ओंभुवः स्वाहा । इदं वायवे नमम ॥ ओंस्वः स्वाहा । इदं सूर्याय नमम। एता महाव्याहृतयः ॥ शुक्लयजु० अध्याय० २१ मन्त्र ३ ॥

ओं—त्वन्नोऽअग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेडो अवयासिसीष्ठाः ॥ यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषाथंसि प्रमुमुग्ध्यस्मत्स्वाहा॥ इदमग्नीवरुणाभ्यां नमम॥

शुक्लयजु० अध्याय २१ । मन्त्र ॥ ४ ॥

ओं स त्वन्नोऽअग्नेऽवमोभवोतीनेदिष्ठोऽअस्याउषसोव्युष्टौ । अवयक्ष्वनोवरुणथं

सेचन करे अर्थात् प्रोक्षणीपात्र का सब जल पर्युक्षण में गिरा देवे । प्रणीतापात्र में दोनों पवित्र रखके प्रोक्षणीपात्र का विसर्जन करे । तदनन्तर दहिने घोंटू को भूमि में टेक कर ब्रह्मा से अन्वारब्ध हुआ वर यजमान प्रज्वलित अग्नि में स्रुवा से आज्याहुतियों का होम करे । यहां २ उस २ आहुति देने पश्चात् स्रुवा में जो घृतबिन्दु बचें उन को प्रोक्षणीपात्र में डालता जावे । प्रजापति का ध्यान कर पूर्वाघार की तूष्णीं आहुति देवे । त्याग सब यजमान स्वयं बोलता जाय । आघार की दो आज्य भाग की दो और महाव्याहृतियों की तीन सर्वप्रायश्चित्त

रराणो व्वीहि मृडीकथं सुहवो नएधि स्वाहा । इदमग्नीवरुणाभ्यां नमम ॥

ओं–अयाश्चाग्नेऽस्यनभिशस्तिपाश्चसत्यमित्त्वमयाअसि । अयानोयज्ञंवहास्ययानोधेहिभेषजथं स्वाहा ॥ इदमग्नये नमम ॥ ओं येतेशतंवरुणयेसहस्रंयज्ञियाःपाशावितताम्हान्तः । तेभिर्नोऽअद्यसवितोतविष्णुर्विश्वेमुञ्चन्तुमरुतःस्वर्काःस्वाहा ॥ इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्यो मरुद्भ्यः स्वर्केभ्यो नमम ॥

शुक्लयजु० अ० १२ (मूल) मन्त्र १२ ॥

उदुत्तमं व्वरुण पाशमस्म्मदवाधमंविमध्यमथंश्रथाय । अथाव्वयमादित्यव्व्रते-तवानागसोऽअदितयेस्यामस्वाहा । इदं वरुणाय नमम ।

एताः सर्वप्रायश्चित्तसंज्ञकाः ॥ ५ ॥

ततोऽन्वारब्धं विना–ओं प्रजापतये स्वाहा । इदं प्रजापतये नमम ॥ ओं अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा । इदमग्नये-स्विष्टकृते नमम ॥ उदकोपस्पर्शनम् ॥ अथ राष्ट्रभृतः । तत्र द्वादश मन्त्रा यथा

शुक्लयजु० अध्याय १८ मन्त्र ३८

ओं–ऋताषाडृतधामाग्निर्गन्धर्व्वःस्स

की पाच तथा प्राजापत्य और स्विष्टकृत दो सब चौदह आहुति त्यागों सहित देके स्विष्टकृत् पर्यन्त होम करने पश्चात् (ओम्–ऋताषा०) इत्यादि बारह मन्त्रों

ऽइदम्ब्रह्मक्षत्रम्पातुतस्मै स्वाहा वाट् ॥ इ-
दमृताषाहेऋतधाम्नेऽग्नयेगन्धर्वायनमम ॥
ओं—ऋताषाडृतधामाग्निर्गन्धर्वस्तस्यौष-
धयोऽप्सरसोमुदोनामताभ्यःस्वाहा । इद-
मोषधिभ्योऽप्सरोभ्योमुद्भ्यो नमम ॥

(यजु० अध्याय १८ मंत्र ३९ ॥

ओं—सꣳहितोविश्वसामासूर्य्योगन्धर्व.सन-
ऽइदम्ब्रह्मक्षत्रम्पातुतस्मैस्वाहावाट् ॥ इदꣳस-
ꣳहितायविश्वसाम्नेसूर्य्यायगन्धर्वायनमम ॥

(यजु० अध्याय १८ मन्त्र ३९)

सꣳहितोविश्वसामासूर्य्योगन्धर्वस्तस्यम-
रीचयोऽप्सरसऽआयुवोनामताभ्यः स्वाहा ॥
इदंमरीचिभ्योऽप्सरोभ्यआयुभ्यो नमम ॥

यजु० अध्याय १८ मन्त्र० ४०

ओं—सुषुम्णाःसूर्य्यरश्मिश्चन्द्रमागन्ध-
र्वःसनऽइदंब्रह्मक्षत्रंपातुतस्मैस्वाहा वाट् ॥
इदं सुषुम्णाय सूर्य्यरश्मये चन्द्रमसे गन्धर्वा-
य नमम ॥

यजु० अध्याय १८ मन्त्र ४०

ओं—सुषुम्णःसूर्य्यरश्मिश्चन्द्रमाग-

न्धर्व्वस्तस्यनक्षत्राण्यप्सरसोभेकुरयोनाम-
ताभ्यःस्वाहा ॥ इदंनक्षत्रेभ्योऽप्सरोभ्योभे-
कुरिभ्यो नमम ॥

यजु० अध्याय १८ मन्त्र ४१

ओं–इषिरोव्विश्वव्व्यचाव्वातोगन्धर्व्वः
सनऽइदम्ब्रह्मक्षत्रम्पातुतस्मैस्वाहा वाट् ॥ इ-
दमिषिराय व्विश्वव्व्यचसे वाताय नमम ॥

यजु० अध्याय १८ मन्त्र ४१

ओं–इषिरोव्विश्वव्व्यचाव्वातोगन्धर्व्व-
स्तस्यापोऽप्सरसऊर्ज्जोनामताभ्यःस्वाहा ॥
इदमद्भ्योऽप्सरोभ्यऊर्ग्भ्यो नमम ॥

यजु० अध्याय १८ मन्त्र ४१

ओं–भुज्युःसुपर्णोयज्ञोगन्धर्व्वःसनइद-
म्ब्रह्मक्षत्रंपातुतस्मैस्वाहावाट् ॥ इदंभुज्यवे
सुपर्णायज्ञायगन्धर्वाय नमम ॥

यजु० अध्याय १८ मन्त्र ४१

ओं–भुज्युःसुपर्णोयज्ञोगन्धर्व्वस्तस्यद-
क्षिणाअप्सरसस्तावानामताभ्यःस्वाहा ॥ इ-
दंदक्षिणाभ्योऽप्सरोभ्यस्तावाभ्यो नमम ॥

यजु० अध्याय १८ मन्त्र ४२

ओं–प्रजापतिर्विश्वकर्म्मामनोगन्धर्व्वः सनइदंब्रह्मक्षत्रंपातुतस्मैस्वाहावाट्। इदं प्रजापतये विश्वकर्मणे मनसे गन्धर्वाय नमम॥ ओं–प्रजापतिर्विश्वकर्म्मा मनोगन्धर्व्वस्तस्यऽऋक्सामान्यप्सरसऽएष्टयो नामताभ्यः-स्वाहा॥इदमृक्सामभ्योऽप्सरोभ्यएष्टिभ्यो नमम। इतिराष्ट्रभृतः॥

अथ जयाहोमः–ओंचित्तंचस्वाहा॥ इदंचित्ताय नमम ॥१॥ ओं चित्तिश्च स्वाहा। इदं चित्त्यै नमम ॥२॥ ओं आकूतं च स्वाहा। इदमाकूताय नमम ॥३॥ ओं आकूतिश्च स्वाहा। इदमाकूत्यै नमम ॥४॥ ओं विज्ञातञ्च स्वाहा। इदंविज्ञाताय नमम ॥५॥ ओं विज्ञातिश्च स्वाहा। इदंविज्ञात्यै नमम ॥६॥ ओं मनश्च स्वाहा। इदंमनसे नमम ॥७॥ ओं शक्वरीश्च स्वाहा। इदंशक्वरीभ्यो नमम ॥ ८ ॥ ओं दर्शश्च स्वाहा। इदंदर्शाय नमम ॥९॥ ओं पौर्णमासश्च स्वाहा। इदंपौर्णमासाय नमम ॥१०॥ ओं बृहच्च स्वाहा। इदं बृहते नमम ॥११॥ ओं रथन्तरं च स्वाहा। इदंरथन्तराय नमम ॥१२॥ ओं प्रजापतिर्जयानिन्द्रायवृष्णेप्रायच्छदुग्रःपृतनाजयेषु। तस्मैविशःसमनमन्तसर्वाःसउग्रःसहइहव्योबभूवस्वाहा॥१३॥ इति जयाहोमः॥

से राष्ट्रभृत्संज्ञक १२ आहुति देकर (ओं चित्तंच०) इत्यादि तेरह मन्त्रों से

अथाभ्याताननामहोमः ॥ ओं अग्निर्भूतानामधिपतिः समावत्वस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यांपुरोधायामस्मिन्कर्मण्यस्यांदेवहूत्याॅं स्वाहा ॥१॥ इदमग्नये भूतानामधिपतये नमम ॥१॥ ओं इन्द्रोज्येष्ठानामधिपतिःसमावत्वस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यांपुरोधायामस्मिन्कर्मण्यस्यांदेवहूत्याॅं स्वाहा । इदमिन्द्रायज्येष्ठानामधिपतये नमम ॥२॥ ओं यमःपृथिव्याऽअधिपतिःसमावत्वस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यांपुरोधायामस्मिन्कर्मण्यस्यांदेवहूत्याॅं स्वाहा । इदंयमायपृथिव्याअधिपतये नमम ॥३॥ अत्र प्रणीतोदकस्पर्शः ॥ ओं वायुरन्तरिक्षस्याधिपतिःसमावत्वस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यांपुरोधायामस्मिन्कर्मण्यस्यांदेवहूत्याॅं स्वाहा । इदंवायवेऽन्तरिक्षस्याधिपतये नमम॥४॥ ओं सूर्योदिवोऽधिपतिःसमावत्वस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यांपुरोधायामस्मिन्कर्मण्यस्यांदेवहूत्याॅं स्वाहा । इदंसूर्यायदिवोऽधिपतये नमम ॥५॥ ओं चन्द्रमानक्षत्राणामधिपतिःसमावत्वस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन्कर्मण्यस्यांदेवहूत्याॅं स्वाहा । इदंचन्द्रमसेनक्षत्राणामधिपतये नमम ॥६॥ ओं बृहस्पतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिःसमावत्वस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यांपुरोधायामस्मिन्कर्मण्यस्यांदेवहूत्याॅं स्वाहा । इदंबृहस्पतयेब्रह्मणोऽधिपतये नमम ॥ ७ ॥ ओं मित्रःसत्यानामधिपतिःसमावत्वस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां

जया होम करके (ओम्-अग्निर्भूताना०) इत्यादि अठारह मन्त्रों से

रोधायामस्मिन्कर्मण्यस्यांदेवहूत्यां स्वाहा । इदंमित्रायसत्यानामधिपतये नमम ॥८॥ ओं वरुणोऽपामधिपतिःसमावत्वस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यांपुरोधायामस्मिन्कर्मण्यस्यांदेवहूत्यां स्वाहा । इदंवरुणायापामधिपतये नमम ॥९॥ ओं समुद्रःस्त्रोत्यानामधिपतिःसमावत्वस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यांपुरोधायामस्मिन्कर्मण्यस्यांदेवहूत्यां स्वाहा । इदंसमुद्रायस्रोत्यानामधिपतये नमम ॥१०॥ ओं अन्नंसाम्राज्यानामधिपतिःसमावत्वस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यांपुरोधायामस्मिन्कर्मण्यस्यांदेवहूत्यां स्वाहा । इदमन्नायसाम्राज्यानामधिपतये नमम ॥११॥ ओं सोमओषधीनामधिपतिःसमावत्वस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यांपुरोधायामस्मिन्कर्मण्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा । इदंसोमायओषधीनामधिपतयेनमम ॥१२॥ ओं सवितामसवानामधिपतिःसमावत्वस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यांपुरोधायामस्मिन्कर्मण्यस्यांदेवहूत्यां स्वाहा । इदंसवित्रेप्रसवानामधिपतयेनमम १३ ओं रुद्रःपशूनामधिपतिःसमावत्वस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यांपुरोधायामस्मिन्कर्मण्यस्यांदेवहूत्यां स्वाहा । इदंरुद्राय पशूनामधिपतयेनमम ॥१४॥ अत्र प्रणीतोदकस्पर्शः ॥ ओं त्वष्टारूपाणामधिपतिःसमावत्वस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यांपुरोधायामस्मिन्कर्मण्यस्यांदेवहूत्यां स्वाहा । इदंत्वष्ट्रे रूपाणामधिपतयेनमम ॥१५॥ ओं विष्णुःपर्वतानामधिपतिःसमावत्वस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यांपु-

रोधायामस्मिन्कर्मण्यस्यांदेवहूत्याᳫं स्वाहा । इदंविष्णवे प्रजानामधिपतये नमम ॥१६॥ ओं मरुतोगणानामधिपतयस्तेमावन्त्वस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यांपुरोधायामस्मिन्कर्मण्यस्यांदेवहूत्याᳫं स्वाहा।इदंमरुद्भ्योगणानामधिपतिभ्यो नमम ॥१७॥ ओं पितरःपितामहाःपरेवरेततास्ततामहाइहमावंत्वस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन्कर्मण्यस्यांदेवहूत्याᳫं स्वाहा । इदंपितृभ्यः पितामहेभ्यःपरेभ्योऽवरेभ्यस्ततेभ्यस्ततामहेभ्यो नमम ॥१८॥ अत्र प्रणीतोदकस्पर्शः ॥ इत्यभ्यातानतामहोमः ॥

अथाज्यहोमः—ओंअग्निरैतुप्रथमोदेवतानाᳫंसोस्यैप्रजांमुञ्चतुमृत्युपाशात्। तदयᳫंराजावरुणोऽनुमन्यतां यथेयᳫंस्त्रीपौत्रमघन्नरोदात्स्वाहा। इदमग्नयेनमम ॥१॥ ओंइमामग्निस्त्रायतांगार्हपत्यःप्रजामस्यैनयतुदीर्घमायुः॥ अशून्योपस्थाजीवतामस्तुमातापौत्रमानन्दमभिविबुध्यतामियᳫंस्वाहा ॥इदमग्नयेनमम ॥२॥ ओं—स्वस्तिनोऽग्नेदिवापृथिव्याविश्वानिधेह्यऽयथायजत्र ॥ यदस्यांमहिदिविजातंप्रशस्तंतदस्मासुद्रविणंधेहिचित्रᳫंस्वाहा। इदमग्नयेनमम॥३॥ओं सुगन्नुपन्थांप्रदिशन्नएहिज्योतिष्मद्धेह्यजरन्नआयुः। अपैतुमृत्युरमृतंनआगाद्वैवस्वतोनोऽअभयंकृणोतुस्वाहा॥ इदमग्नयेनमम ४ ओम्—परंमृत्योऽनुपरेहिपन्थांयस्तेऽन्यइतरोदेवयानात्। च-

---

न होम करे । तीसरी चौदहवीं और अठारहवीं आहुति के अन्त में दहिने हाथ से प्रणीता के जल का स्पर्श करलेवे। तदनन्तर (ओम्-अग्निरैतु०) इत्यादि पांच मन्त्रों से पांच आहुति घृत की देवे। चौथी और पांचवीं आहुति के अन्त में

क्षुण्मतेशृण्वतेतेब्रवीमिमानःप्रजाꣳरीरिषोमोतवीरान् स्वाहा इदंवैवस्वताय नमम ॥५॥ अत्रप्रणीतोदकस्पर्शः ॥ ततो वधूमग्रतः कृत्वा वधूवरौ प्राङ्मुखौ स्थितौ भवतः ॥ ततो वराञ्जलिपुटोपरिसंलग्नवध्वञ्जलिपुटोपरिघृताभिघारितवधूभ्रातृदत्तशमीपलाशमिश्रैर्लाजैर्वधूकर्तृकोहोमः ॥

१ ओं—अर्यमणंनुदेवंकन्याअग्निमयक्षत। सनोअर्यमादेवःप्रेतोमुञ्चतुमापतेः स्वाहा॥१॥ इयंनार्य्युपब्रूतेलाजानावपन्तिका। आयुष्मानस्तुमेपतिरेधन्तांज्ञातयोममस्वाहा ॥२॥ इमाँल्लाजानावपाम्यग्नौ समृद्धिकरणं तव। ममतुभ्यचसंवननंतदग्निरनुमन्यतामियꣳ स्वाहा ॥३॥ अथास्यैदक्षिणंहस्तं गृह्णाति वरः साङ्गुष्ठम्। ओं गृभ्णामितेसौभगत्वायहस्तं मयापत्याजरदष्टिर्यथासः। भगोऽर्यमासवितापुरन्धिर्मह्यंत्वादुर्गार्हपत्यायदेवाः ॥४॥ ओम्—अमोहमस्मिसात्वꣳसात्वमस्यमोऽहम् ॥ सामाहमस्मिऋक्त्वंद्यौरहंपृथीवीत्वम् ॥५॥ तावेवविवहावहैसहरेतोदधावहै प्रजांप्रजनयावहै पुत्रान्विन्दावहैबहून् ॥६॥ तेसन्तुजरदष्टयःसंप्रियौरोचिष्णूसुमनस्यमानौ॥ पश्येमशरदःशतंजीवेमशरदः शतꣳशृणुयामशरद.शतम् ॥७॥

प्रणीता के जल का स्पर्श करे। तदनन्तर कन्या को आगे करके कन्या वर दोनो पूर्वाभिमुख खड़े होवें। तदनन्तर वर की अञ्जलि पर सम्मिलित कन्या की अञ्जलि धरे इस कन्या की अञ्जली में घी मिलाये शमी [छोंकरि] के पत्तों सहित लाजा [धान की खीलें] कन्या का भाई अपनी अञ्जुली से भरे। उन अञ्जुली भर लाजाओं से कन्या तीन आहुति (ओम्–अर्यमणं०) इत्यादि तीन मन्त्रो से देवे। तदनन्तर (गृभ्णामिते०) इत्यादि मन्त्र पढ़ता हुआ वर कन्या के दहिने हाथ को अंगूठे सहित पकड़े। तत्पश्चात् पूर्वाभिमुख खड़ा हुआ वर पहिले से अग्नि के उत्तर में रक्खी हुई पत्थर की शिला पर कन्या के दहिने

ओं आरोहेममश्मानमश्मेव त्वꣳ स्थिरा भव ॥ अभितिष्ठ-पृतन्यतोऽवबाधस्व पृतनायतः ॥ अथ गाथां गायति ॥ सरस्वतीप्रेदमवसुभगे वाजिनीवति ॥ यांत्वाविश्वस्यभूतस्य प्रजायामस्याग्रतः । यस्यांभूतꣳसमभवद्यस्यांविश्वमिदंजगत् । तामद्यगाथांगास्यामियास्त्रीणामुत्तमंयशइति ॥ अथ-वधूवरौ अग्निंपरिक्रामतस्तुभ्यमग्नेइतिमन्त्रेण ॥

ऋ० मं० १० अ० ७ सू० ८५ मंत्र ३८ ।

तुभ्यमग्नेपर्य्यवहन्सूर्यांवहतुनासह । पुनः पतिभ्योजायांदाअग्नेप्रजयासह । इतिपठन् परिक्रामेत् ॥ १० ॥

एवं पश्चादग्नेः स्थित्वा-लाजाहोमसाङ्गुष्ठहस्तग्रहणाश्मारोहणगाथागानाग्निप्रदक्षिणानि पुनरपि द्विस्तथैव कर्त्तव्यानीति ॥ एतेन नवलाजाहुतयः साङ्गुष्ठहस्तग्रहणा-त्रयं च संपद्यते तथाऽत्रासनविपर्ययः । ततोऽवशिष्टलाजैः

पग को (आरोहे०) मन्त्र को पढता हुआ धरवावे । कन्या पत्थर पर पग धरें हो इसी बीच में वर (ओं सरस्वती०) इत्यादि गाथा गावे । तदनन्तर आगे कन्या चले और पीछे वर चले प्रणीता और ब्रह्मा सहित अग्निकी दोनों परिक्रमा करें। परिक्रमा करते समय (ओं तुभ्यमग्ने०) मन्त्र को वर पढता चले । तत्पश्चात् अग्नि से पश्चिम में पूर्वाभिमुख दोनों वधू वर खड़े हों और पूर्ववत् तीन मन्त्रों से लाजा होम अङ्गुष्ठ सहित पाणिग्रहण, अश्मारोहण गाथागान और अग्नि की प्रदक्षिणा सब पूर्ववत् करके इसी प्रकार लाजा होमादि परिक्रमा पर्यन्त सब काम मन्त्रों सहित तीसरीवार भी करें । इस प्रकार नव लाजाहुति और तीन वार अङ्गुष्ठ सहित पाणिग्रहण हो जाता है । इसी समय कन्या का आसन वर से उत्तर में कर देना चाहिये । तदनन्तर शमी के पत्तों सहित शेष

कन्याभ्रातृदत्तैरञ्जलिस्थशूर्पकोणेन वधूर्जुहोति ॥ ओं भगायस्वाहा—इदं भगाय नमम । अथाग्रे वरः पश्चात्कन्या तूष्णीमेव चतुर्थपरिक्रमणं कुरुतः । ततोवरउपविश्य ब्रह्मणान्वारब्धआज्येन प्राजापत्यं जुहुयात् । ओं प्रजापतये स्वाहा । इदं प्रजापतये नमम । इति मनसा ॥ अत्र प्रोक्षणीपात्रे आहुतिशेषाज्यस्य प्रक्षेपः ॥ ततश्चालेपनेनोत्तरोत्तरकृतसप्तमण्डलेषु वधूं सप्तपदाक्रमणं वरः कारयेद् वक्ष्यमाणमन्त्रैः॥ ओं एकमिषे विष्णुस्त्वा नयतु ॥ कन्या—धनंधान्यंचमिष्टान्नं व्यञ्जनाद्यंचयद्गृहे । मदधीनंच कर्त्तव्यं वधूराद्येपदेवदेत् ॥१॥ वरः—द्वेऊर्ज्जेविष्णुस्त्वानयतु ॥ क०—कुटुम्बंप्रर्थयिष्यामि सदातेमञ्जुभाषिणी । दुःखेधीरासुखेहृष्टा द्विती-

---

चचे लाजा कन्या का भाई सूप सहित कन्या को देदेवे और कन्या (भगाय०) मन्त्र से सूप के कोणे से होम कर देवे । इस के पश्चात् आगे वर और पीछे वधू चले तूष्णी चौथी परिक्रमा करें । तत्पश्चात् अग्नि से पश्चिम दहिनी ओर वर तथा बाईं ओर कन्या बैठे तब ब्रह्मा के अन्वारम्भ करने पर वर मन्त्र का मन से उच्चारण करके घृत से प्राजापत्याहुति करे । यहां स्रुवा के शेष घृत को प्रोक्षणीपात्र में डाले । तदनन्तर अग्नि से उत्तर में सात गोलाकार लेपन किये मण्डलों में कन्याको वर सात वार अगले (ओंमेकमिषे०) इत्यादि मन्त्रों से पग धरावे । अर्थात् पहिला पग धराने में वर कहता है कि (एकमिषे०) अन्नादि प्राप्ति के लिये विष्णु तुम को एक पद चलावे अर्थात् अन्नादि की रक्षा पुष्टि बनाना खिलाना आदि तुम्हारा काम होगा । इस पर कन्या वर से कहे कि (धन धान्यं च०) हे स्वामिवर धन, धान्य—अन्न मिठाई, दूध दही आदि जो कुछ घर में रहने वाले वस्तु हों वे सब मेरे आधीन आप को करने चाहिये । यह पहिला पग धरने में वधू कहे । तदनन्तर वर (द्वेऊर्ज्जे०) बल वा रस के लिये विष्णु तुम को द्वितीय पद चलावे ॥ वधू (कुटुम्बं०) मैं आप के कुटुम्ब को बढाऊंगी और सदा कोमल भाषण करूंगी । दुःख वा विपत्ति में धीरज रक्खूंगी और सुख सम्पत्ति के समय प्रसन्न रहूंगी यह प्रतिज्ञा वधू द्वितीय पग

येसाऽब्रवीद्वरम् ॥ २ ॥ वरः—त्रीणिरायस्पोषाय विष्णुस्त्वा-
नयतु । क०—ऋतौकालेशुचिःस्नाता क्रीडयामित्वयासह ।
नाहंपरपतिं यायां तृतीयेसाऽब्रवीद्वरम् ॥ ३ ॥ वरः—चत्वा-
रिमायोभवायविष्णुस्त्वानयतु । क०—लालयामिचकेशान्तं
गन्धमाल्यानुलेपनैः । काञ्चनैर्भूषणैस्तुभ्यं तुरीयेसाऽब्रवीद्व-
रम् ॥४॥ वरः—पञ्चपशुभ्यो विष्णुस्त्वानयतु । क०—सखी-
परिवृतानित्यं गृहेकर्मणितत्परा । त्वयिभक्ताभविष्यामिप-
ञ्चमेसाऽब्रवीद्वरम् ॥५॥ वरः—षड्ऋतुभ्यो विष्णुस्त्वानयतु ॥
क०-यज्ञेहोमेचदानादौ भवेयंतववामतः । यत्रत्वंतत्रतिष्ठामि
पदेषष्ठेऽब्रवीद्वरम् ॥६॥ वरः—सखेसप्तपदाभवसामामनुव्रता-

धरने में करे । वर-(रायस्पोषाय०) धनकी पुष्टि के लिये अर्थात् लक्ष्मीशोभा शृङ्गार बढ़ाने के लिये विष्णु तुम को तीसरा पग चलावे । वधू-(ऋतौकाले०) ऋतुकाल में स्नान कर शुद्ध हुई शुद्ध वस्त्र पहिने कर आप के साथ क्रीड़ा करूंगी में कभी परपति का ध्यान भी न करूंगी यह प्रतिज्ञा तीसरा पग धरने में वधू करे । वर-(चत्वारिमायो०) सुख होने के लिये चौथा पग विष्णु तुम को चलावे । वधू-(लालयामि च०) सुगन्ध इतर फुलेल आदि केशों पर्यंत सब शरीर में लगाने, केशर चन्दनादि सुगन्ध का स्नान के पश्चात् अनुलेपन करने और सुवर्ण के आभूषण पहन कर आप को प्रसन्न करूंगी यह चौथा पग धरने में कन्या प्रतिज्ञा करे । वर-(पशु०) गौ भैंस आदि के दूध आदि से सुख होने के लिये घोड़ा आदि से होने वाले सुख के लिये तुम को विष्णु पांचवां पग चलावे । कन्या-(सखीपरि०) मैं सदा अपनी सखी सहेलियों सहित गृहस्थी के काम में तत्पर रहती हुई आप की भक्ति करूंगी यह प्रतिज्ञा पांचवां पग धरने में कन्या करे । वर-(षड्ऋतु०) छः ऋतुओं सम्बन्धी सुख प्राप्त कराने के लिये विष्णु तुम को छठा पग चलावे । कन्या-(यज्ञे होमे च०) यज्ञ होम और दानादि पुण्य कर्म करने में मैं आप से बांयी ओर बैठूंगी और जहां आप रहेंगे वहीं रहूंगी साथ नहीं छोडूंगी यह प्रतिज्ञा छठा पग धरने में कन्या करे । वर (सखे सप्तपदा०) मेरे साथ मित्रता और सदा दृढ़ प्रीति रखने के लिये

भवविष्णुस्त्वानयतु॥ कन्या-सर्वदेवार्चनंहित्वाभजेयं त्वांदृढव्रता। भवानेवगुरुर्मेऽस्तिसप्तमेसाऽब्रवीद्वरम् ॥७॥ ततोऽग्नेः पश्चादुपविश्य पुरुषस्कन्धे स्थितात्कुम्भादाम्रपल्लवेन जलमानीय तेन वरो वधूमभिषिञ्चति ॥ ओं आपः शिवाः शिवतमाः शान्ताःशान्ततमास्तास्तेकृण्वन्तुभेषजमिति । अनेन मन्त्रेण,पुनस्तथैव तस्मादेव कुम्भात्तथैवानीतजलेन-

य० अ० ११ मन्त्र ५

ओम्-आपोहिष्ठामयोभुवस्तानऊर्ज्जेदधातन ॥ महेरणायचक्षसे ॥ ओम्-योवः शिवतमोरसस्तस्यभाजयतेहनः । उशतीरिवमातरः॥ ओम्-तस्माऽअरङ्गमामवोयस्यक्षयायजिन्वथ॥ आपोजनयथाचनः ॥ इति तिसृभिर्वधूमात्मानं चाभिषिञ्चति ॥ इति ॥

ततःसूर्यमुदीक्षस्वेति वधूं सम्बोधयति वरः॥ तच्चक्षुरित्यृचं पठित्वा वधूः सूर्यं पश्येत् ॥

पतिव्रता धर्म का ठीक २ पालन करने वाली सातो धामो में तुम प्रख्यात हो जाओ और इसके लिये विष्णु तुम को सातवा पग चलावे । कन्या-(सर्वदेवार्चनं०) मैं दृढ नियम के साथ सब देवताओं का पूजन छोड़ के केवल एक आप का ही भजन पूजन सेवा शुश्रूषा करूंगी आपही एक मेरे गुरु है मैं दासी वैरागी उदासी मठ मुसंडे किसी के दर्शनको भी कभी न जाऊंगी और किसी अन्य पुरुष का कभी मन से ध्यान भी नहीं करूंगी । तदनन्तर अग्नि से पश्चिम में बैठकर किसी पुरुष के कन्धेपर धरे हुए वा रक्षित घड़े से आम के पत्तेद्वारा जल लेकर वर वधू के शिर पर (ओं-आप शि०) से अभिषेक करे तथा (आपोहिष्ठा०) इत्यादि तीन मन्त्रों से वधू के और अपने दोनो के ऊपर अभिषेक करे। तब

यजु० अ० ३६ मंत्र २४

तच्चक्षुर्देवहितम्पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् । पश्येम शरदः शतञ्जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतम्प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतम्भूयश्च शरदः शतात् ॥

इति पठित्वा सूर्यं पश्यति ॥ अस्तंगते सूर्ये ध्रुवमुदीक्षस्व इति प्रैषानन्तरं कन्या ध्रुवं पश्येत्। यदि ध्रुवतारा न दृश्येत तथापि कन्या पश्यामीति ब्रूयात। तत्र वरपठनीयो मन्त्रः ॥

ओं—ध्रुवमसिध्रुवंत्वापश्यामि ध्रुवैधि पोष्ये मयि । मह्यंत्वादाद्बृहस्पतिर्मयापत्याप्रजावतीसञ्जीवशरदःशतम् ॥

अथ वरो वधूदक्षिणांसस्योपरि हस्तं नीत्वा तस्या हृदयमालभेत। मन्त्रो यथा—

ममव्रतेतेहृदयंदधामिममचित्तमनुचित्तंतेऽअस्तु ॥ ममवाचमेकमनाजुषस्वप्रजापतिष्ट्वानियुनक्तुमह्यम् ॥

वर कहे (सूर्यमुदीक्षस्व०) कि तुम सूर्य को देखो और वधू (तच्चक्षुर्देव०) मन्त्र पढ़ के सूर्य का दर्शन करे। यदि सूर्य के अस्त होजाने पर रात्रि में विवाह हो तो वर कहे (ध्रुवमुदीक्षस्व) कि तुम ध्रुव को देखो और (ध्रुवमसि०) इत्यादि मन्त्र को वर पढ़े। यदि कन्या को ध्रुव न दीखता हो तो भी कहदे कि (पश्यामि) देखती हूं। तत्पश्चात् वर वधू के दहिने कन्धे के ऊपर से दहिना हाथ लाकर वधू के हृदय का स्पर्श (ममव्रते०) मन्त्र पढ़के करे। तदनन्तर वर वधू की

इति मन्त्रेण । अथ वधूमभिमन्त्रयति वरः ।

सुमङ्गलीरियंवधूरिमाथंसमेत पश्यत ।
सौभाग्यमस्यै दत्वा याथास्तं विपरेतन ॥

अथ स्विष्टकृद्धोमः॥ ओं अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा । इदमग्नये स्विष्टकृते नमम॥ अत्र स्रुवावशिष्टाज्यस्य प्रोक्षणीपात्रे प्रक्षेपः । अयञ्च होमो ब्रह्मणान्वारब्धकर्तृकः ॥ अथ संस्रवप्राशनम् । ततआचम्य पूर्णपात्रं दक्षिणां ब्रह्मणे दद्यात् ॥ ओं अद्यकृतैतद्विवाहहोमकर्मणि ब्रह्मकर्मप्रतिष्ठार्थमिदं पूर्णपात्रं प्रजापतिदैवतममुकगोत्रायामुकशर्मणे ब्रह्मणे ब्राह्मणाय दक्षिणा तुभ्यमहं सम्प्रददे । ओं स्वस्तीत्युक्त्वा ब्रह्मा प्रतिगृह्णीयात् । ततः-ओमद्य कृतैतद्विवाहहोमकर्मण्या-चार्यकर्मप्रतिष्ठार्थमिदं हिरण्यमग्निदैवतं द्रव्यं यथानाम गोत्रायाऽमुकशर्मणे ब्राह्मणाय दक्षिणां तुभ्यमहं संप्रददे ॥ अत्र ग्रामवचनं च कुर्युः ॥ ओं सुमित्रिया न आपओषधयः सन्तु । इति पवित्रद्वारा प्रणीताजलं गृहीत्वा शिरः समृज्य ।

और देखता हुआ (सुमङ्गलीरियं०), मन्त्र पढ़े । पश्चात् ब्रह्मा के अन्वारम्भ करने पर (अग्नयेस्विष्ट०) मन्त्र से स्विष्टकृत् आहुति करे और स्रुवा में बचे शेष घृतबिन्दुओं को प्रोक्षणी पात्र में गिरावे । तब संस्रव प्राशन कर आचमन करके (ओमद्य कृतै०) इत्यादि सङ्कल्प वाक्य पढ़ के प्रथम ब्रह्मा को पूर्ण पात्र दक्षिणा देवे ब्रह्मा स्वस्ति कहकर स्वीकार करे । तदनन्तर आचार्य को भी उक्त प्रकार दक्षिणा देवे । इसी समय वृद्ध स्त्री पुरुषों के कथनानुसार कुलाचार देशाचार की रीति करे तदनन्तर (ओंसुमित्रियान०) मन्त्र पढ़के प्रणीता के जल से पवित्र द्वारा शिरपर मार्जन करे और (ओंदुर्मित्रि०) मन्त्र से

ओं-दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान् द्वेष्टि यञ्च वयं द्विष्मः ॥ इत्यैशान्यां सपवित्रां सजलां प्रणीतां न्युब्जीकुर्यात् ॥ ततः स्तरणक्रमेण बर्हिरुत्थाप्य आज्येनाभिघार्य वक्ष्यमाणमन्त्रेण हस्तेनैव जुहुयात् ॥

य० अ० ८ मं० २१ ।

ओम्-देवा गातुविदो गातुं वित्त्वा गातुमित । मनसस्पतऽइमं देवयज्ञꣳ स्वाहा वातेधाः स्वाहा ॥ इति बर्हिर्होमः ॥

ततउत्थाय वध्वा दक्षिणहस्तेन स्पृष्टैः स्रुवस्थघृतपुष्पफलैः पूर्णाहुतिं कुर्यात् ॥ मूर्द्धानमिति मन्त्रस्य भरद्वाज ऋषिर्वैश्वानरो देवता त्रिष्टुप्छन्दः पूर्णाहुतिहोमे विनियोगः।

यजु अ० ७ मं० २४

ओम्-मूर्द्धानं दिवोऽअरतिम्पृथिव्यावैश्वानरमृतऽआजातमग्निम् । कविꣳसम्राजमतिथिं जनानामासन्नापात्रं जनयन्त देवाः स्वाहा ॥

इदमग्नये नमम ॥ ततउपविश्य स्रुवेण भस्मानीय दक्षिणानामिकाग्रगृहीतभस्मना ॥

प्रणीता के शेष जलको ईशान दिशा में लौटा देवे। तब स्तरण क्रम से कुशों को उठाकर घृत से अभिघारण करके (ओ देवागातु०) मन्त्र पढ के हाथ से ही कुशो का होम कर देवे। तदनन्तर वर खडा होके वधू के दहिने हाथ से स्पर्श कराये घृत पुष्प और फलो से भरे स्रुवाद्वारा (ओमूर्द्धानं०) मन्त्र पढके पूर्णाहुति देवे। तब स्रुवाद्वारा भस्म लेकर दहिने हाथ की अनामिका से (त्र्यायुषं०) से

य० अ० ३ मं० ६२

ओं–त्र्यायुषंजमदग्नेः । इतिललाटे ।
ओं–कश्यपस्य त्र्यायुषम् । इति ग्रीवायाम् ।
ओं–यद्देवेषुत्र्यायुषम् । इति दक्षिणबाहुमूले ॥
ओं–तन्नोऽअस्तु त्र्यायुषम् । इति हृदये ॥

अनेनैव क्रमेण वध्वाअपि त्र्यायुषं कुर्यात् । तत्र तन्नोइत्यत्र तत्ते इति विशेषः ॥ ततआचारात्शणशङ्खशमीपुष्पार्द्राक्षतारोपणसिंदूरकरणं वरः कुर्यात् ॥ अथ वेदितो मण्डपमागत्य दूर्वाक्षतादिग्रहणम् ॥ ततस्त्रिरात्रमक्षारालवणाशिनौ अधःशायिनौ निवृत्तमैथुनौ भवतः । प्राङमुखौ वधूवरौ स्थितौ भवतः ॥ इति विवाहपद्धतिः समाप्ता ॥

अथ चतुर्थीकर्म प्रारभ्यते ॥ तत्र चतुर्थ्यामपररात्रे चतुर्थीकर्म तच्च गृहाभ्यन्तरएव कार्य्यम् । ततउद्वर्तनादि कृत्वा युगकाष्ठउपविश्य वधूवरौ प्राङ्मुखौ भवतः ॥ ततः

ललाट में (कश्यपस्य०) से कण्ठ में (यद्देवेषु०) से दक्षिण बाहु के मूल में और (तन्नो०) से अपने हृदय में भस्म लगावे । इसी प्रकार वधू के भी ललाटादि में भस्म लगावे वधू के भस्म लगाते समय (तन्नो०) के स्थान में (तत्ते०) ऐसा पाठ मन्त्र में कहे । तदनन्तर आचार के अनुसार शण, शंङ्ख शमीपत्र पुष्प और गीले अक्षतो से वर कन्या के सिन्दूर करे । तब वेदि से मण्डप में आकर दूर्वाक्षतादि ग्रहण करें । आगे तीन दिन अलौना भोजन करें पृथिवी पर सोवें ब्रह्मचर्य से रहें ॥ इति विवाहपद्धति समाप्ता ॥

अथ–चतुर्थी कर्म

विवाह से चौथे दिन रात्रि के १२ बजे पश्चात् यह विवाह का शेष कर्म घर के भीतर करना चाहिये। उबटना और स्नानादि करके वर वधू दोनो काष्ठ

कुशकण्डिकाप्रारम्भक्रमः—जामातृहस्तपरिमितां वेदीं कुशैः परिसमुह्य तान्कुशानैशान्यां दिशि निक्षिप्य गोमयोदकेनोपलिप्य स्फ्येन स्रुवेण वा प्रागग्रप्रादेशमात्रत्रिरुत्तरोत्तरक्रमेणोल्लिख्यउल्लेखनक्रमेणानामिकाङ्गुष्ठाभ्यामृदमुद्धृत्य जलेनाभ्युक्ष्य तत्र तूष्णीं कांस्यपात्रेणाग्निमानीय स्वाभिमुखं निदध्यात् ॥ ततः पुष्पचन्दनताम्बूलवस्त्राण्यादाय। ओं अस्यां रात्रौ कर्तव्यचतुर्थीकर्महोमकर्मणि कृताऽकृतावेक्षणरूपब्रह्मकर्मकर्तुममुकगोत्रममुकशर्माणं ब्राह्मणमेभिः पुष्पचन्दनताम्बूलवासोभिर्ब्रह्मत्वेन त्वामहं वृणे। इति ब्रह्माणं वृणुयात्। ओं वृतोऽस्मीति प्रतिवचनम्। यथाविहितं कर्म कुर्विति वरेणोक्ते। करवाणीति ब्राह्मणो वदेत् ॥ ततोऽग्नेर्दक्षिणतः शुद्धमासनं दत्त्वा तदुपरि प्रागग्रान्कुशानास्तीर्य ब्रह्माणमग्निप्रदक्षिणक्रमेणानीय, ओं अत्र त्वं मे

की चौकियों पर पूर्वाभिमुख बैठें और वेदिपरिसमूहनादि होम यथा विधि करें। प्रथम वेदि में पञ्चभूसंस्कार करे—तीन कुशों से वेदि को झाड़ कर कुशों को ईशान कोण में फेंक कर गोबर और जल से लीप कर स्रुवा के मूल वा स्फ्य से वेदि में उत्तर २ प्रागायत तीन रेखा करे अनामिका और अङ्गुष्ठ से रेखाओं में से मट्टी को उठा कर फेंक के वेदि में जलसेचन करे। फिर कांसे वा मट्टी के पात्र में अग्नि लाकर पश्चिमाभिमुख स्थापन करे। तत्पश्चात्-पुष्प चन्दन ताम्बूल और वस्त्रों को लेकर (ओमद्य०) इत्यादि वाक्य पढ़के यजमान वर ब्रह्मा का वरण करे और पुष्पादि ब्रह्मा के हाथ में देवे। ब्रह्मा पुष्पादि को लेकर (वृतोऽस्मि) कहे। तब (यथावि०) यजमान कहे और ब्रह्मा (करवाणि०) कहे। तब अग्नि से दक्षिण में शुद्ध आसन चौकी आदि बिछाकर उस पर पूर्व को जिन का अग्रभाग हो ऐसे कुश बिछाकर ब्रह्माको अग्नि की प्रदक्षिणा कराके (अस्मिन् कर्मणि त्वं मे ब्रह्मा भव) इस कर्म में तुम मेरे ब्रह्मा हो ऐसा

ब्रह्माभवइत्यभिधाय । ओं भवानीति ब्राह्मणेनोक्ते । कल्पितासने उदङ्मुखं ब्रह्माणमुपवेशयेत् ॥ ततः पृथूदकपात्रमग्नेरुत्तरतः प्रतिष्ठाप्य प्रणीतापात्रं पुरतः कृत्वा वारिणा परिपूर्य्य कुशैराच्छाद्य ब्रह्मणो मुखमवलोक्याग्नेरुत्तरतः कुशोपरि निदध्यात् ॥ ततः परिस्तरणम् । वर्हिषश्चतुर्थभागमादायाग्नेयादीशानान्तं ब्रह्मणोऽग्निपर्यन्तम् नैर्ऋत्याद्वायव्यान्तं अग्नितः प्रणीतापर्यन्तम् । ततोऽग्नेरुत्तरतः पश्चिमदिशि पवित्रच्छेदनार्थं कुशत्रयं पवित्रकरणार्थं साग्रमनन्तर्गर्भं कुशपत्रद्वयं प्रोक्षणीपात्रमाज्यस्थाली सम्मार्जनार्थं कुशत्रयं उपयमनार्थं वेणीरूपं कुशत्रयं समिधस्तिस्रः स्रुवः आज्यं । तण्डुलपूर्णपात्रम् । एतानि पवित्रच्छेदनकुशानां पूर्वपूर्वदिशि क्रमेणासादनीयानि ॥ ततः पवित्रच्छेदनकुशैः पवित्रे छित्वा प्रादेशमितपवित्रकरणम् ॥ ततः

कहकर ब्रह्मा के (भवानि) कहने पर उस आसन पर ब्रह्मा को उत्तराभिमुख बैठा कर किसी बड़े जलपात्र को अग्नि से उत्तर में स्थापित कर प्रणीतापात्र को सामने रखके जल से भरके कुशों से आच्छादन कर ब्रह्मा का मुख अवलोकन करके अग्निसे उत्तर में कुशोंपर प्रणीतापात्र को प्रागग्र रक्खे । तदनन्तर चार मुट्ठी कुश लेकर अग्नि के सब ओर परिस्तरण करे—एक चौथाई कुश अग्निकोण से ईशानदिशा तक, द्वितीयभाग ब्रह्मा के आसन से अग्निपर्यन्त, तृतीयभाग नैर्ऋतकोण से वायुकोण पर्यन्त और चौथाभाग अग्नि से प्रणीता पर्यन्त बिछावे । तदनन्तर अग्नि से उत्तरमें प्राक्संस्थ पात्रासादन करे । पवित्र छेदनार्थ तीन कुश तथा पवित्रकरणार्थ अग्रभाग सहित जिन के भीतर अन्य कुश न हों ऐसे दो कुश, प्रोक्षणीपात्र, आज्यस्थाली, संमार्जनकुश, उपयमनकुश, ढाक की तीन समिधा, स्रुव, आज्य, चावलों से भरा एक पूर्णपात्र, पवित्र छेदन कुशों से पूर्व पूर्व दिशा में क्रम से उत्तर को अग्रभाग कर २ इन सब का स्थापन करे । पवित्रच्छेदनार्थ तीन कुशों से प्रादेशमात्र दो कुशों का छेदन करके पवित्र सहित

सपवित्रकरेण प्रणीतोदकं त्रिःप्रोक्षणीपात्रे निधाय अनामिकाङ्गुष्ठाभ्यामुत्तराग्रे पवित्रे गृहीत्वा त्रिरुत्पवनं ततः प्रोक्षणीपात्रस्य सव्यहस्तकरणम् । पवित्रे गृहीत्वा त्रिरुदिङ्गनम् । प्रणीतोदकेन प्रोक्षणीप्रोक्षणम् । ततः प्रोक्षणीजलेन यथासादितवस्तुसेचनम् ॥ ततोऽग्निप्रणीतयोर्मध्ये प्रोक्षणीपात्रं निधाय, आज्यस्थाल्यामाज्यनिर्वापः । ततोऽधिश्रयणं ततो ज्वलत्तृणादिना हविर्वेष्टयित्वा प्रदक्षिणक्रमेण पर्यग्निकरणम् । ततः स्रुवं प्रतप्य सम्मार्जनकुशानामग्रैरन्ततो मूलैर्बाह्यतः स्रुवसंमार्जनम् ॥ प्रणीतोदकेनाभ्युक्ष्य पुनः प्रतप्य स्रुवं दक्षिणतो निदध्यात्॥ ततआज्यस्याग्नेरवतारणम् । तत आज्ये प्रोक्षणीवदुत्पवनम् । आज्यमवेक्ष्य सत्यपद्रव्ये तन्निरसनं पुनः पूर्ववत्प्रोक्षण्युत्पवनम् । उप-

---

दहिने हाथ से प्रणीता के जल को तीन बार प्रोक्षणीपात्र में डाल कर अनामिका और अङ्गुष्ठ से पकडे हुए पवित्रो से उस प्रोक्षणीस्थ जल का उत्पवन करे और प्रणीता के जल से प्रोक्षणीस्थ जल का पवित्रों द्वारा तीन वार अभिसेचन कर के प्रोक्षणीपात्र के जल से आसादन किये आज्यस्थाली आदि का सेचन करके अग्नि और प्रणीतापात्र के बीच में प्रोक्षणीपात्र को रख देवे । तब आज्यस्थाली में घृतपात्र से घृत गिरावे और घृत को अग्नि पर धरके सूखे कुश जलाकर घी के ऊपर प्रदक्षिण भ्रमण कराके अग्नि में जलते कुश फेंक कर स्रुवा को तीन वार अग्नि में तपा के संमार्जन कुशों के अग्रभाग से भीतर की ओर कुशों के मूलभाग से बाहर की ओर स्रुवा को झाड़ पोंछ शुद्धकर तथा प्रणीता के जल से सेचन करके और फिर तीन बार तपा के अग्नि से दक्षिण की ओर स्रुवा को धर देवे । तत्पश्चात् तपते हुए घी को अग्निसे उतार के उत्तर में धरे । तब तीन वार प्रोक्षणी के तुल्य पवित्रो से घी का उत्पवन करके देखे यदि घृत में कुछ निकृष्ट वस्तु हो तो निकालकर फेंक देवे और फिर तीनबार प्रोक्षणीपात्र

यमनकुशान्वामहस्तेनादाय उत्तिष्ठन् प्रजापतिं मनसा ध्यात्वा तूष्णीमग्नौ घृताक्ताः समिधस्तिस्रः क्षिपेत् ॥ तत उपविश्य प्रोक्षणीजलेनाग्निं प्रदक्षिणं पर्युक्ष्य पवित्रे प्रणीतापात्रे धृत्वा ब्रह्मणान्वारब्धः पातितदक्षिणजानुर्जुहुयात् । तत्राघारादारभ्याहुतिचतुष्टये तत्तदाहुत्यनन्तरं स्रुवावस्थिताज्यं प्रोक्षण्यां क्षिपेत् । ओं प्रजापतये स्वाहा । इदं प्रजापतये नमम । इति मनसा । ओं इन्द्राय स्वाहा । इदमिन्द्राय नमम । इत्याघारौ । ओम्-अग्नये स्वाहा । इदमग्नये नमम । ओं सोमाय स्वाहा । इदं सोमाय नमम ॥ इत्याज्यभागौ ॥ ततआज्याहुतिपञ्चतये स्थालीपाकाहुतौ च प्रत्याहुत्यनन्तरं स्रुवावस्थितहुतशेषघृतस्य चरोश्च प्रोक्षणीपात्रे प्रक्षेपः । ब्रह्मणान्वारब्धं विना जुहुयात् ।

ओं-अग्ने प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रा-

का उत्पवन करे । तदनन्तर उठकर उपयमनकुशों को बाम हाथ में लेके प्रजापति का मन से ध्यान करके घृत में डुबोई तीन समिधाओं को तूष्णीं बिना मन्त्र पढे एक २ कर अग्नि में चढावे । फिर बैठ कर पवित्र सहित प्रोक्षणी के जल को प्रदक्षिणक्रम से ईशानकोण से लेकर उत्तर दिशा तक अग्निके सब ओर सेचन करे अर्थात् प्रोक्षणीपात्र का सब जल पर्युक्षण में गिरा देवे । प्रणीतापात्र में दोनों पवित्र रखके प्रोक्षणीपात्र का विसर्जन करे। तदनन्तर दहिने घोटू को भूमि में टेककर ब्रह्मा से अन्वारब्ध हुआ वर यजमान प्रज्वलित अग्निमें स्रुवा से आज्याहुतियों का होम करे । यहां २ उस २ आहुति के देने पश्चात् स्रुवा में जो घृतबिन्दु बचें उन को प्रोक्षणीपात्र में डालता जावे । प्रजापति का मन से ध्यान कर पूर्वाघार की तूष्णीं आहुति देवे और यजमान स्वयं सब त्याग बोलता जाय । आघार की दो आज्यभाग की दो इन चार आहुतियों को देकर पांच आज्याहुतियों और स्थालीपाकाहुति में प्रत्येक आहुति के पश्चात् स्रुवा में बचे शेष घृत और चरु को प्रोक्षणीपात्र में डालता जावे (अग्ने प्रायश्चि०)

यश्चित्तिरसि। ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि याऽस्यै पतिघ्नी तनूस्तामस्यै नाशाय स्वाहा। इदमग्नये नमम॥ ओं वायो प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकामऽउपधावामि याऽस्यै प्रजाघ्नी तनूस्तामस्यै नाशाय स्वाहा ॥२॥ इदं वायवे नमम। ओं सूर्य प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकामऽउपधावामि यास्यै पशुघ्नी तनूस्तामस्यै नाशाय स्वाहा॥३॥इदं सूर्याय नमम। ओं चन्द्र प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकामऽउपधावामि याऽस्यै गृहघ्नी तनूस्तामस्यै नाशाय स्वाहा ॥४॥ इदं चन्द्रमसे नमम। ओं गन्धर्व प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकामऽउपधावामि याऽस्यै यशोघ्नी तनूस्तामस्यै नाशाय स्वाहा ॥५॥ इदं गन्धर्वाय नमम।

ततश्चरुमभिघार्य स्थालीपाकेन जुहुयात् । ओं प्रजापतये स्वाहा । इदं प्रजापतये नमम । इति मनसा ॥ तत आज्याहुतिनवके हुतशेषघृतस्य प्रोक्षणीपात्रे प्रक्षेपः । अयं च होमो ब्रह्मणान्वारब्धकर्तृकः। तत आज्यस्थालीपाकाभ्यां स्विष्टकृद्धोमः ॥ ओं अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा । इदमग्नये स्विष्टकृते नमम। तत आज्येन। ओं भूः स्वाहा । इदमग्नये नमम। ओं भुवः स्वाहा । इदं वायवे नमम। ओं स्वः स्वाहा। इदं सूर्याय नमम। एता महाव्याहृतयः ॥

(शुक्लयजुर्वेद अध्याय २१ मंत्र ३)

ओं त्वन्नोऽअग्ने वरुणस्य विद्वान्देवस्य हेडोऽअवयासिसीष्ठाः ॥ यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषाथंसि प्रमुमुग्ध्यस्मत्स्वाहा ॥ इदमग्नीवरुणाभ्यां नमम ॥१॥

(शुक्लयजु० अध्याय २१ मन्त्र ४ ॥)

ओं स त्वन्नोऽअग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठोऽअस्याऽउषसो व्युष्टौ ॥ अवयक्ष्व नो वरुणथं रराणो वीहि मृडीकथंसुहवो नऽएधि

इत्यादि पांच मन्त्रों से पांच आहुति घृत की देकर चरु का अभिघारण करके स्थालीपाक से एक प्राजापत्य आहुति का होम तूष्णीं करे। तदनन्तर अगली नौ आज्याहुतियों में प्रत्येक आहुति के पश्चात् स्रुवा में शेष बचे घृत बिन्दुओं को प्रोक्षणीपात्र में गिराता जावे और ब्रह्माके अन्वारम्भ करने पर इन नव आहुतियों का होम करे। घृत और स्थालीपाक दोनों से स्विष्टकृत् आहुति देकर महाव्याहृतियों की

स्वाहा ॥ इदमग्नये नमम॥२॥ ओम्-अया-
श्चाग्नेऽस्यनभिशस्तिपाश्च सत्यमित्त्वम-
याऽअसि। अया नो यज्ञं वहास्यया नो धेहि
भेषजथं स्वाहा ॥ इदमग्नये नमम ॥ ३ ॥
ओं ये ते शतं वरुण ये सहस्रं यज्ञियाः पाशा
वितता महान्तः। तेभिर्नोऽअद्य सवितोत
विष्णुर्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्काः स्वाहा ॥
इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो दे-
वेभ्यो मरुद्भ्यः स्वर्केभ्यो नमम ॥४॥

शुक्लयजुर्वेद अध्याय २१ मन्त्र १२ ॥

ओम्-उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि-
मध्यमथं श्रथाय। अथा वयमादित्य व्रते
तवानागसोऽअदितये स्याम स्वाहा॥इदं व-
रुणाय नमम॥५॥एताःसर्वप्रायश्चित्तसंज्ञकाः॥

ओं प्रजापतये स्वाहा। इदं प्रजापतये नमम।

इति मनसा। इदं प्राजापत्यं ततः संस्रवप्राशनम्। आचम्य-
ओमस्यां रात्रौ कृतैतच्चतुर्थीहोमकर्मणि कृताऽकृतावेक्षणरू-
पब्रह्मकर्मप्रतिष्ठार्थमिदं पूर्णपात्रं प्रजापतिदैवतममुकगो-

तीन सर्वप्रायश्चित्त की पांच तथा मन से प्राजापत्य एक इन सब आहुतियों को
त्यागों सहित देके संस्रवप्राशन तथा आचमन करके संकल्पवाक्य पढ़ ब्रह्मा को

न्नायामुकशर्मणे ब्रह्मणे ब्राह्मणाय दक्षिणां तुभ्यमहं संप्रददे॥ इति दक्षिणा दद्यात्॥ ओ स्वस्तीति प्रतिवचनम् ॥ ततः-

ओ-सुमित्रिया नऽआपऽओषधयः सन्तु ।

इति पवित्राभ्यां शिरः संमृज्य ।

ओंदुर्म्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान्द्वेष्टि यञ्च वयं द्विष्मः ॥

इत्यैशान्या दिशि प्रणीता न्युब्जी कुर्यात् । ततः स्तरणक्रमेण बर्हिरुत्थाप्य घृताक्तं कृत्वा हस्तेनैव जुहुयात् ॥

शुक्ल यजुर्वेद अध्याय ८ मंत्र २१

ओ देवा गातुविदो गातुं वित्त्वा गातुमित । मनसस्पतऽइमन्देवयज्ञꣳ स्वाहा वाते धाः स्वाहा ॥

तत आम्रपल्लवेन जलमादाय वरो मूर्ध्नि वधूमभिषिञ्चति-

ओं या ते पतिघ्नी प्रजाघ्नी पशुघ्नी गृहघ्नी यशोघ्नी निन्दिता तनूर्जारघ्नी तत

दक्षिणा देवे तथा ब्रह्मा (ओ स्वस्ति) कह कर दक्षिणा का स्वीकार करे । तदनन्तर (सुमित्रि०) मन्त्र पढ के पवित्रों द्वारा प्रणीता का जल लेकर शिर में सम्मार्जन करे तथा (दुर्मित्रि०) मन्त्र पढ के प्रणीता के शेष जल को ईशान दिशा में लौट देवे पश्चात् जिस क्रम से बिछाये थे उसी क्रम से सब कुश उठा कर कुशों में घी लगाके (ओ देवागातु०) मन्त्र पढ हाथ से ही होम कर देवे पश्चात् वर आम के पत्ते से जल लेकर वधू के मूर्द्धा पर (ओ याते पतिघ्नी०)

एनां करोमि सा जीर्यं त्वं मया सह, श्री अमुकदेवी । इति मन्त्रेण ।

ततो वधूं स्थालीपाकं प्राशयति वरः ।

ओं-प्राणैस्ते प्राणान्संदधामि । ओं-अस्थिभिस्तेऽस्थीनि संदधामि ॥ ओं-माꣳसैस्ते माꣳसानि संदधामि । ओं-त्वचा ते त्वचं संदधामि ॥

इति मन्त्रचतुष्टयेन प्रतिमन्त्रान्ते अन्नं प्राशयेत् ॥ ततो वधूहृदयं स्पृशन् वरः पठेत् ।

ओं-यत्ते सुसीमे हृदयं दिवि चन्द्रमसि श्रितम् । वेदाहं तन्मां तद्विद्यात्पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतमिति ॥

तत उत्थाय वधूदक्षिणहस्तस्पृष्टस्रुवेण घृतफलपुष्पपूर्णेन पूर्णाहुतिं जुहुयात् ॥ (यजु० अध्याय ७ मन्त्र २४)

ओं मूर्द्धानं दिवोऽअरतिस्पृथिव्या वैश्वा-

मन्त्र से अभिषेक करे । तदनन्तर वर वधू को (ओंप्राणैस्ते०) इत्यादि चार मन्त्रों से प्रत्येक मन्त्र के अन्त में अपने हाथ से भात ले २ कर चार ग्रास खवावे । तदनन्तर (ओ यत्तेसु०) मन्त्र पढके वर वधू के हृदय का स्पर्श करे । तत्पश्चात्-उठ खड़ा होके वधू के दहिने हाथ से स्पर्श कराये घृत फल और पुष्पों से भरे हुए स्रुवा से (ओ मूर्द्धानं०) मन्त्र पढ़ के पूर्णाहुति करे और स्रुवा के मूल

नरमृतऽआजातमग्निम् । कदिथंसस्त्राजम-
तिथिञ्जनानामासन्ना पात्रञ्जनयन्त देवाः
स्वाहा ॥ इदमग्नये नमम ॥

ततः स्रुवेण भस्मानीय दक्षिणानामिकया त्र्यायुषं कुर्यात् ।

यजु० अध्याय ३ मन्त्र ६२

ओं त्र्यायुषं जमदग्नेः ॥ इतिललाटे । ओं
कश्यपस्य त्र्यायुषम् ॥ इति ग्रीवायाम् । ओं
यद्देवेषु त्र्यायुषम् । इतिदक्षिणबाहुमूले ॥
ओं तन्नो अस्तु त्र्यायुषम् ॥ इति हृदये ॥

एवं वध्वाअपि त्र्यायुषङ्कुर्यात् । तत्र तन्नोइत्यस्य स्थाने तत्तइति विशेषः । ततआचार्याय दक्षिणां दद्यात् ॥ भूयसीं दद्यात् ॥ इति चतुर्थाकर्म समाप्तम् ॥

द्वारा लाये भस्म को दहिने हाथ की अनामिका के अग्रभाग से (त्र्यायुषं०) से ललाट में (कश्यपस्य०) से कण्ठ में (यद्देवेषु०) से दहिने बाहू के मूल में और (तन्नोअस्तु०) से हृदय में भस्म लगावे । इसी प्रकार वधू के भी त्र्यायुष करे—उस में (तन्नो०) के स्थान में (तत्ते) कहे तदनन्तर आचार्य को दक्षिणा देवे अन्य सुपात्रों को भी यथाशक्ति यथायोग्य देवे ॥

इति चतुर्थीकर्म समाप्तम् ॥

अथान्त्येष्टिकर्म निरग्निकानाम् ॥

यदि म्रियमाणसंबन्धिनो दानं चिकीर्षेयुस्तर्हि मनुष्याणां मरणकालात्प्राक् तस्य स्वस्थदशायामेव कुर्युर्नच मरणकालेऽतिसंनिहिते कुर्युः। करणकाले सन्निहिते म्रियमाणस्य सम्बन्धिनईश्वरभक्त्यर्थमुपदिशेयुः संसाराद्वैराग्यं च दर्शयेयुः। भगवद्गीतादिस्थं शान्तिजनकं सदुपदेशं च श्रावयेयुः। सप्रणवां गायत्रीं च स्मारयेयुः। तथा च–भगवद्गीतायामुक्तम्–ओमित्येकाक्षरंब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्। यःप्रयातित्यजन्देहं सयातिपरमांगतिम्॥ ततः प्राणोत्क्रान्तेपु कर्त्ता पुत्रादिः स्वस्य केशश्मश्रुवापनानन्तरं स्नात्वाऽहते वाससी परिधाय मृतसमीपे गत्वा शवं स्नपयित्वाऽहतवस्त्रं परिधाप्योत्तरीयं च परिधापयेत्। शवस्य सर्वाङ्गेपु चन्दनानुलेपनं कुर्यात्पुष्पमालाश्च परिधापयेत्। पुरुपश्चेन्नवं यज्ञो-

---

भावार्थः–मनुष्य के मरने के समय पुत्रादि लोग यदि दान करना चाहें तो मनुष्य के मरने से पहिले उस को स्वस्थ दशा में ही करें। किन्तु प्राण निकलने का समय अतिसमीप आजावे तब न करें। मरण समय के समीप आजाने पर मरते हुए के सम्बन्धी लोग ईश्वर भक्ति के लिये उपदेश करें संसार से वैराग्य दिखावें और भगवद्गीतादि में लिखा सदुपदेश सुनावें तथा ओंकार सहित गायत्री मन्त्र का स्मरण करावें। और भगवद्गीता में भी कहा है कि–"जो पुरुष मरण समय में ओम् इस एकाक्षर वेद मन्त्र का उच्चारण करता और मुझ ईश्वर का स्मरण करता हुआ शरीर को छोड़ता है वह परमोत्तमगति को प्राप्त होता है" तदनन्तर प्राणान्त हो जाने पर क्रिया करने वाला पुत्रादि अपने बाल दाढ़ी मौंछ मुड़वाके स्नान कर शुद्ध कोरे दो वस्त्र पहन कर मृतक के समीप जाकर मृतक को स्नान करा और कोरा नया धौत वस्त्र पहना कर ऊपर से दुपट्टा उढावे। मृतक के सब अङ्गों में चन्दन का अनुलेपन करे और पुष्पों की माला पहिनावे। यदि पुरुष मृतक हो तो नया यज्ञोपवीत भी पहनावे। तद-

पत्नीतं च धारयेत् । ततः कर्त्ता पुत्रादिरपसव्येन देशकालौ संकीर्त्य–अमुकगोत्रस्य पितुरमुकप्रेतस्य प्रेतत्वनिवृत्त्या उत्तमलोकप्राप्त्यर्थमौर्ध्वदेहिकं करिष्यइति संकल्प्यैकोद्दिष्टनिमित्तकं मरणस्थाने शवनाम्ना पिण्डं दद्यात्–तत्रायं प्रकारः–आचम्य प्राणानायम्यापसव्येन कुशानादाय शवसमीपे दक्षिणामुख उपविश्य–अद्येत्यादि संकल्प्य–अमुकगोत्रामुकप्रेतः ब्रह्मदैवतक एष ते पिण्डो मया दीयते तवोपतिष्ठताम्–इति ब्रह्मपिण्डं दत्त्वा द्वारदेशे विष्णुपिण्डं दद्यात् । अमुकगोत्रामुकप्रेत विष्णुदेवतक एष ते पिण्डो मया दीयते तवोपतिष्ठताम् । इति । ततो वस्त्रेण प्रच्छादितमुखं प्रेतं प्राक्शिरसमूर्ध्वमुखं गृहान्निष्क्राम्य दाहदेशं प्रति नयेयुः । गमनकाले यमगाथां गायन्तो यमसूक्तं वा जपन्तो वृद्धवयसोऽग्रे कृत्वाऽल्पाल्पवयसः पश्चात्कृत्वा गच्छेयुः । अहरहर्नयमानो गामश्वंपुरुषंजगम् । वैवस्वतोनतृप्यति सुराइवदुर्मतिः ॥ इति यमगाथा ॥

नन्तर पुत्रादि क्रिया करने वाला अपसव्य हो देशकाल को कह कर (अमुकगो०) इत्यादि संकल्प करे । एकोद्दिष्ट के लिये मरण स्थान में मृतक के नाम से एक पिण्ड देवे । इस की रीति यह है कि–आचमन प्राणायाम कर अपसव्य हो कुशों को हाथ में ले के मृतक के समीप दक्षिणाभिमुख बैठ कर (अद्य०) इत्यादि संकल्प कह के अवनेजन पूर्वक ब्रह्मदैवतक पहिला पिण्ड धरे ऊपर से यथोक्त प्रत्यवनेजन करे । तदनन्तर द्वार देश में विष्णुदैवतक पिण्ड अवनेजन प्रत्यवनेजन सहित देवे । तदनन्तर वस्त्र से मृतक का मुख ढांपकर पूर्व को शिर ऊपर को मुख किये मृतक को घर से निकाल के श्मशान स्थान को ले चलें । चलते समय अधिक २ आयु वाले आगे चलें तथा कम २ आयु वाले पीछे चलें तथा चलते हुए (अहरहर्नय०) इत्यादि यमगाथा का गान वा यमसूक्त का जप करते जावें ।

॥ अथ यमसूक्तप्रारम्भः॥

ओं–तदेव। तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्त-
दु चन्द्रमाः। तदेवशुक्रन्तद्ब्रह्मताऽआपःस-
प्रजापतिः॥१॥ ओं–सर्वेनिमेषाः। सर्वेनिमेषा-
जजिरेविद्युतःपुरुषादधि। नैनमूर्द्ध्वन्नतिर्य-
ञ्चन्नमद्ध्येपरिजग्रभत्॥२॥ ओं–न तस्य प्प्र-
तिमाऽअस्ति यस्यनाममहद्यशः। हिरण्यगर्भ-
ऽइत्येपमासाहिथंसीदित्येषायस्मान्नजातऽइ-
त्येषः॥३॥ ओं–एषोह देवःप्रदिशोऽनुसर्वाःपू-
र्वोहजातःसऽउगर्भेऽअन्तः। सऽएवजातःसज-
निष्यमाणःप्रत्यङ्जनास्तिष्ठतिसर्वतोमुखः ४
ओं–यस्माज्जातन्नपुराकिञ्चनैव यऽआबभूव
भुवनानि विश्वा। प्रजापतिःप्रजया संथंरराण-
स्त्रीणिज्योतीथंपिसचतेसपोडशी॥५॥ ओं–
येनद्यौरुग्रापृथिवीचदृढा, येनस्वःस्तभितंये-
ननाकः। योऽअन्तरिक्षेरजसोविमानः क-
स्मैदेवायहविषाविधेम॥६॥ ओं–यङ्क्रन्दसी
ऽअवसातस्तभानेऽअस्यैक्षेताम्मनसारेजमा-

ने । यत्राधिसूरऽउदितोविभाति कस्मैदेवा-
यहविषाविधेम। आपोहयद्बृहतीर्यश्चिदा-
पः ॥ ७ ॥ ओं–वेनस्तत्पश्यन्निहितङ्गुहास-
द्यत्रविश्वम्भवत्येकनीडम् । तस्मिन्निदꣳसञ्च-
विचैतिसर्वꣳसऽओतःप्रोतश्च विभूःप्रजासु ॥८॥
ओं–प्रतद्वोचेदमृतन्नुविद्वान्गन्धर्वोधामविभृ-
तङ्गुहासत् ॥ त्रीणिपदानिनिहितागुहास्य
यस्तानिवेदसपितुःपितासत् ॥ ९ ॥ ओं–स-
नोबन्धुर्जनितासविधाता धामानिवेदभुवना
निविश्वा । यत्रदेवाऽअमृतमानशानास्तृती-
येधामन्नध्यैरयन्त ॥ १० ॥ ओं–परीत्यभू-
तानिपरीत्यलोकान्परीत्यसर्वाःप्रदिशोदिश-
श्च। उपस्थायप्रथमजामृतस्या–त्मनात्मा-
नमभिसंविवेश॥ ११ ॥ ओं–परिद्यावापृथिवी
सद्यऽइत्वापरि लोकान्परिदिशःपरिस्वः। ऋ-
तस्यतन्तुविततं विचृत्य तदपश्यत्तदभवत्तदा-
सीत्॥१२॥ ओं–सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य
काम्यम् । सनिंमेधामयासिषꣳस्वाहा ॥१३॥

ओं-याम्मेधान्देवगणाः पितरश्चोपासते ॥ तयामामद्यमेधयाऽग्ने मेधाविनङ्कुरुस्वाहा ॥ १४ ॥ ओम्-मेधाम्मेवरुणोददातु मेधामग्निःप्रजापतिः ॥ मेधामिन्द्रश्चवायुश्च मेधान्धाताददातुमेस्वाहा ॥ १५ ॥ ओम्-इदम्मेब्रह्मचक्षत्र-ञ्चोभेश्रियमश्नुताम् । मयिदेवादधतु श्रियमुत्तमान्तस्यैतेस्वाहा ॥ १६ ॥ इति संहितापाठे द्वात्रिंशोऽध्यायः। इति यम सूक्तं समाप्तम् ॥

मार्गमध्ये विश्रामपिण्डं दद्यात् । यथा-अमुकगोत्रामुकप्रेत रुद्रदैवतक एष ते पिण्डो मया दीयते तवोपतिष्ठताम् । ततः श्मशाने नीत्वा भूमौ शनैः शवं दक्षिणशिरसं स्थापयेयुः । श्मशानदेशस्तु ग्रामादाग्नेय्यां नैर्ऋते वा कोणे सर्वतो निम्न अनावरणे वहुलौषधिके मध्योन्नतः कार्यः । तत्र दाहाय वेदिं कुर्यात्-तथा चाश्वलायनगृह्यसूत्राणि-दक्षिणाप्रवणं प्राग्दक्षिणाप्रवणं वा प्रत्यग्दक्षिणाप्रवणमि-

---

बीच मार्ग में पहुंचें तब विश्राम पिण्ड अवनेजन प्रत्यवनेजन सहित देवें । तदनन्तर श्मशान में पहुंचकर मृतक को धीरे से भूमि में दक्षिण को शिरकरके धरें। श्मशान का स्थान ग्राम से आग्नेय या नैर्ऋत कोण में सब ओर से नीचा बीच में कुछ ऊंचे पर चारों ओर से खुला बहुत प्रकार की घासादि जहां हो वहां करे। वहां पूर्व से निश्चित किये ऊपर कहे श्मशान में वेदि बनावे। आश्वलायन गृह्यसूत्रों में मृतक की वेदि (चिता) बनाने का प्रकार यों लिखा है कि-वेदि दक्षिण को नीची उत्तर को कुछ ऊंची रहे वा आग्नेय कोण की ओर नीची रहे अथवा

त्येके ॥ ७ ॥ यावानुद्बाहुकः पुरुषस्तावदायामम् ॥८॥ आ-
ममात्रं तिर्यक् ॥९॥ वितस्त्यवांक् ॥१०॥ आ० ४ । १ । तदा
कर्त्ता प्राचीनावीती भूत्वा भूरसीति चिताभूमिमभिमन्त्रयेत्-

ओम्-भूरसि भूमिरस्यदितिरसि विश्व
धाया विश्वस्य भुवनस्य धर्त्री। पृथिवीं यच्छ
पृथिवीं दृथंह पृथिवीं माहिथंसीः ॥१॥

ततइदमापइतिमन्त्रेण चितास्थाने प्रोक्षयेत्-

ओमिदमापः प्रवहतावद्यं च मलं च यत् ।
यच्चाभिदुद्रोहानृतं यच्चशेपेऽअभीरुणम् ।
आपोमातस्मादेनस पवमानश्चमुञ्चतु ॥

ततश्चितास्थाने यमपिण्डं दद्यात् । अमुकगोत्रामुक
प्रेत यमदैवतक एप ते पिण्डो मया दीयते तवोपतिष्ठताम् ।
ततः समिद्धो अञ्जलिति मन्त्रेण यज्ञियकाष्ठैरेव दहनस
मर्था चितिं कारयेत-

ओ-समिद्धोऽअञ्जन्कृदरंमतीनाङ्घृतमग्ने-

किन्हीं के मत में नैर्ऋतकोण की ओर नीची रहे । ऊपर को बाहू उठाने से मनुष्य की जितनी लम्बाई होती है उतनी लम्बी वेदि करे और एक बेंता-साढे तीन हाथ तिर्छी चौडी हो एक बिलस्तो गहरी खोदे । तब क्रिया करनेवाला अपसव्य होकर (ओम्भूरसि०) मन्त्र से चिता की भूमिका अभिमन्त्रण करे अर्थात् चिता की भूमि को देखता हुआ मन्त्र पढे। तब (इदमाप०) इस मन्त्र से चिता की भूमिका प्रोक्षण करे । तदनन्तर चिता स्थान में यमदैवतक पिण्ड अवने-जनप्रत्यवनेजन पूर्वक देवे । तत्पश्चात् (समिद्धोऽअञ्जन्०) मन्त्र पढ के वेदि में

मधुमत्पिन्वमानः । वाजीवहन्वाजिनंजातवेदोदेवानांवक्षिप्रियमासधस्थम् ॥

ततः—अपेतोजन्त्वितिमन्त्रेण चितिं प्रोक्षयेत्—

ओम्—अपेतोयन्तुपणयोऽसुम्नादेवपीयवः । अस्यलोकःसुतावतः । द्युभिरहोभिरक्तुभिर्व्यक्तं यमोददात्ववसानमस्मै ॥

इति प्रोक्ष्य तदुपरि कुशतिलानास्तीर्य तत्र चितौ दक्षिणशिरसं शवं निदध्यात् । ततः कर्त्ता प्रेतस्य मुखे नासिकाद्वये चक्षुर्द्वये श्रोत्रद्वये च हिरण्यशकलानि निक्षिपेदाज्यविन्दून्वा । ततः प्रेतकुक्षौ पिण्डदानम्—अमुकगोत्रामुकप्रेत प्रेतदैवतक एप ते पिण्डो मया दीयते तवोपतिष्ठताम् । अत्र सर्वत्रैव ब्रह्मपिण्डादिपञ्चपिण्डेपु—अवनेजन प्रत्यवनेजने यथोक्तरीत्या कार्यएव । ततः शवोपरिकाष्ठचयनम् । ततः शिरःप्रदेशे भूमौ—क्रव्यादसंज्ञकमग्निं प्रज्वाल्य क्रव्यादाय नमइति प्रदक्षिणां कृत्वा—

यथासम्भवी लकड़ी ईंधन का ऐसा चयन करे जिस में शीघ्र ही मृतक भस्म हो सके । जो कोई पुरुष अच्छा चिन सकता हो वही काष्ठों का चयन करे । तदनन्तर चयन किये ईंधन पर (अपेतो यन्तु०) मन्त्र से जल प्रोक्षण कर चिता के काष्ठों पर कुश बिछावे और कुशों पर तिल फैलावे । चितास्थ लकड़ियों पर बिछाये कुश तिलो पर दक्षिण को शिर करके मृतक को लिटावे । तदनन्तर क्रिया करने वाला मृतक के मुख, नासिका के दोनो छिद्रों, दोनों चक्षु और दोनो कानोमें इन सातो छिद्रो में छोटे २ सुवर्णके टुकड़े रक्खे वा घृत के बिन्दु छोड़े । तत्पश्चात् मृतक की कुक्षि में अवनेजन प्रत्यवनेजन पूर्वक सङ्कल्प करके पिण्ड देवे । पश्चात् मृतक के ऊपर लकड़ी चिने शिर की ओर लकड़ियों से लगता हुआ भूमि पर क्रव्याद अग्नि को स्थापन करके प्रज्वलित करे (ओ क्र-

ओं त्वं भूतभृज्जगद्योनिस्त्वं भूतपरिपालकः।
मृतः संसारिकस्तस्मादेनं त्वं स्वर्गतिं नय ॥

-इति प्रार्थ्य तत-आज्यहोमं कुर्यात्-

ओं लोमभ्यः स्वाहा ।२। ओं त्वचे स्वाहा।२। लोहिताय स्वाहा ।२। मेदोभ्यः स्वाहा ।२। मांसेभ्यः स्वाहा ।२। स्नावभ्यः स्वाहा ॥२॥ अस्थभ्यः स्वाहा ।२। मज्जभ्यः स्वाहा ॥२॥ रेतसे स्वाहा ॥२॥ पायवे स्वाहा ।२। आयासाय स्वाहा ।२। प्रयासाय स्वाहा ।२। संयासाय स्वाहा ।२। वियासाय स्वाहा ।२। उद्यासाय स्वाहा ।२। शुचे स्वाहा ।२। शोचते स्वाहा ।२। शोचमानाय स्वाहा ।२। शोकाय स्वाहा ।२। तपते स्वाहा ।२। तप्यते स्वाहा ।२। तप्यमानाय स्वाहा ।२। तप्ताय स्वाहा ।२। घर्माय स्वाहा ।२। निष्कृत्यै स्वाहा ।२। प्रायश्चित्यै स्वाहा ।२। भेषजाय स्वाहा ।२। यमाय स्वाहा ।२। अन्तकाय स्वाहा ।२।

व्याद्याय नम) कह कर अग्नि की प्रदक्षिणा कर (ओं त्व०) इत्यादि वचन पढ़ के अग्नि की प्रार्थना करके (ओंलोम०) इत्यादि मन्त्रों से जलती हुई चिता में

मृत्यवे स्वाहा ।२। ब्रह्मणे स्वाहा ।२। ब्रह्महत्यायै स्वाहा ।२। विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा ।२। ओं द्यावापृथिवीभ्यां स्वाहा ।२।

एताश्चाहुतीर्दत्वा वामं जान्वाच्य चतस्रआज्याहुतीर्जुहुयात्—यथा—

ओम्—अग्नये स्वाहा । ओं—सोमाय स्वाहा । ओं—लोकाय स्वाहा । ओं—अनुमतये स्वाहा ।

ततः प्रेतस्य हृदये पञ्चमीमाहुतिं दद्यात्—

ओं—अस्माद्वै त्वमजायथा अयं त्वदधिजायतामसौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहा ॥

अत्र—असावित्यस्य स्थाने प्रेतस्य संबुद्ध्यन्तं नामोच्चारणीयम् । एताः पञ्चाहुतय आश्वलायनगृह्यउक्ताः । ततः पूर्णे दग्धे वाऽर्धे दग्धे सति शवमस्तकं काष्ठेन भित्त्वा तत्रैकामाज्याहुतिं दद्यात्—

ओम्—भूर्भुवःस्वः स्वाहा ॥

घी की आहुति देवे। एक २ मन्त्र से दो २ आहुति देनी चाहिये। इन अट्ठारह आहुतियों को देकर बायें घोटू को भूमि में टेक कर (ओ—अग्नये०) इत्यादि अगली चार आहुति घी से करे। तदनन्तर मृतक के हृदय पर (अस्माद्वै०) मन्त्र से घृत की पांचवीं आहुति देवे। मन्त्र में पढे असौ शब्द के स्थान में मृतक का नाम संबोधनान्त उच्चारण करे। पूर्वोक्त पांच आहुतियां आश्वलायनगृह्य में लिखी है। तत्पश्चात् पूरा वा आधा जलजाने पर मृतक के मस्तक को किसी दृढ लम्बी लकड़ी से फोड़ कर उस फोड़े हुए मस्तक पर (ओ भूर्भुव०) मन्त्र

ततः प्रेतदाहानन्तरं सर्वे शवस्पृशः शवानुगन्तारश्च चितां वामावृत्या परावृत्त्य प्रेतमनवलोकमानाः—अहरहर्नयमानो गामश्वं पुरुषान्पशून् । वैवस्वतो न तृप्यति सुराया इव दुर्मतिः ॥ इति यमगाथां गायन्तः कनिष्ठपूर्वा जलाशयं गच्छेयुः । नद्यादिसमीपस्थितं कंचिद्दुर्योनिसम्बद्धं श्यालकं वा सपिण्डादयः सर्वे (उदकं करिष्यामहे) इति पठित्वोदकं याचेरन् । एवं याचिते यदि शतवर्षादर्वाक्प्रेतो भवेत्तदा (कुरुध्वं मा चैवं पुनः) इत्येवमुत्तरं दद्यात् । यदि शतवर्षादूर्ध्वं प्रेतो भवेत्तदा कुरुध्वमित्येवोत्तरं वदेत् । ततः सप्तमपुरुषसम्बन्धिनः सपिण्डा वा दशमपुरुषसम्बन्धाः समानोदकाः समानग्रामनिवासे यावत्सापिण्ड्यं सगोत्रत्वं वाऽनुस्मरेयुः । तावन्तः सर्वे प्राचीनावीतिन एकवस्त्रा जलं प्रविश्य वामहस्तस्यानामिकाङ्गुल्या तू-

---

से घृत की एक आहुति देवे । तब मृतक का दाह हो जाने पर मृतक का स्पर्श करने वाले और साथ आये हुए सब लोग बायीं ओर से चिता की परिक्रमा करके मृतक की ओर न देखते हुए और (अहरहर्नय०) इत्यादि यमगाथा को गाते हुए तथा कम २ आयुवाले आगे २ और अधिक २ आयु वाले पीछे २ चलते हुए जलाशय को लौटें । किसी नदी आदि जलाशय के निकट आकर समीप में उपस्थित किसी मृतक के सम्बन्धी वा साले से कुटुम्बी आदि सब लोग पूछें कि (उदकं करिष्यामहे) हम लोग उदकक्रिया करेंगे ऐसी आज्ञा मांगने पर यदि सौ वर्ष से कम आयु का पुरुष मरा हो तो वह सम्बन्धी वा साला कहे कि (कुरुध्वं मा चैवं पुनः) उदकक्रिया करो पर फिर आगे ऐसा न करना ऐसा उत्तर देवे । और यदि सौ वर्ष से ऊपर का मनुष्य मरा हो तो (कुरुध्वम्) करो इतना ही उत्तर देवे तब सात पीढ़ी वाले वा दश पीढ़ी तक के जहां तक सपिण्डता और मृतक का अपना एक गोत्र जानते हों वे उतने सब समानोदक पुरुष अपसव्य हो एक वस्त्र पहने हुए जल में घुस कर बायें हाथ की अ-

ष्ठामुदकमपनोद्य–ओम्–अप नः शोशुचदघम्। इति दक्षिणाभिमुखा जले निमज्जेयुः। तत उदकाद् बहिरागत्य प्रेतमुद्दिश्यामुकसगोत्रामुकशर्मन् प्रेत एतत्त उदकमित्युच्चार्य एकैकमञ्जलिं सकृद्भूमौ प्रक्षिपेयुः। ततः शाड्वलवति शुद्धदेशे उपविष्टान्सपिण्डादीनन्ये सुहृदः शोकनिवारकभगवद्गीतोपनिषदादिकथाभिः संसारानित्यतां दर्शयन्तउपदिशेयुः। ततः पश्चादनवलोकयन्तः कनिष्ठानग्रतः कृत्वा पङ्क्तीभूता ग्राममायान्ति। आगत्य च गृहद्वारे स्थित्वा निम्बपत्राणि दन्तैरवखण्ड्योदकमाचम्याग्निं गोमयं गौरसर्षपांस्तैलं चेति क्रमेणालभ्य पादेनाश्मानमाक्रम्य गृहं प्रविशेयुः। ततः परं सर्वे ज्ञातयो यावदाशौचं ब्रह्मचर्यमधःशयनं लौकिककर्माकरणमन्येषां च कुर्वित्यप्रेरणं क्रीत्वा

नामिका अङ्गुलि से तूष्णीं बिना मन्त्र पढ़े जल को इधरउधर हटाकर (ओं–अप-नः०) मन्त्र पढ़ दक्षिण को मुख करके जल में एक साथ एक ही डुबकी लगावें तत्पश्चात् सब लोग जल से बाहर आकर एक २ अञ्जुलि भर जल मृतक के उद्देश से भूमि में छोड़ें। इसी का नाम उदकक्रिया है। तदनन्तर घास वाले शुद्धस्थान में बैठे हुए कुटुम्बियों को अन्य इष्ट मित्र लोग शोकनिवारक भगवद्गीता और उपनिषदादि सद्ग्रन्थों की कथा सुनाके संसार की अनित्यता दिखावें। तत्पश्चात् पीछे को न देखते हुए थोड़े आयु वालों को आगे कर वृद्ध २ पीछे हो पङ्क्ति लगाके घर को आवें। मृतक के द्वार पर आके खड़े हो वहां नींब के पत्तों को सब लोग दांतों से काट २ कर थूक दें और जल का आचमन कर अग्नि, गोबर, श्वेत सरसों और तैल इन पदार्थों का क्रम से स्पर्श करके और पत्थर को लांघ कर घर में प्रवेश करें। तत्पश्चात् सब कुटुम्बी लोग शुद्धि के दिन तक ब्रह्मचर्य से रहें स्त्री के निकट कोई न जावे, पृथिवी पर सोवें, व्यवहार का कोई काम न करें और अन्य नौकर आदि को काम करने की आज्ञा भी न देवें, मोल लेकर वा बिन मांगे कोई दे देवे तो भोजन करें पकाये

लब्ध्वा वा दिवैव मांसवर्जं भोजनमिति नियमान्सेवेरन्। भोजनकाले प्रथमदिने कर्मकर्त्ता पुत्रादिः कृतापसव्यो दक्षिणामुखः पातितवामजानुरुपलिप्तपिण्डस्थानोपरि दक्षिणाग्रं कुशत्रयमास्तीर्य–ओम्–अद्यामुकगोत्रामुकप्रेतात्रावनेनिक्ष्वेति कुशत्रयोपरि–अवनेजनं दद्यात् ततो भोजनार्थादन्नादन्नमादाय पिण्डं कृत्वा–ओमद्यामुकगोत्रामुकप्रेत–एष ते पिण्डो मया दीयते तवोपतिष्ठताम्। इति संकल्प्यैकं पिण्डं दद्यात्। ततः प्रत्यवनेजनदानम्–ओम्–अद्यामुकगोत्रामुकप्रेत प्रत्यवनेनिक्ष्व–इति पिण्डोपरि जलं दद्यात्। यस्मिन्दिने स म्रियेत तस्यामेव रात्रौ मृन्मये पात्रे क्षीरोदके कृत्वा यष्ट्यादिकमवलम्ब्याकाशे प्रेतात्रेति मन्त्रेण धारयेत्। ओं–प्रेतात्र स्नाहि पिब चेदम्। ततो द्वितीयदिवसमारभ्याशौचावधि भगवद्गीतोपनिषदादिकं शोकनिवारकं संसारानित्यत्वदर्शकं शास्त्रं प्रेतकुटुम्बिनः शृणुयुः।

कोई नहीं और मांस रहित दिन में हीं एक बार भोजन करें रात्रि को नहीं। इन नियमों का सेवन शुद्धि के दिन तक करें। भोजन के समय पहिले दिन कर्म करने वाला पुत्रादि अपसव्य हो दक्षिण को मुख कर वाम घोंटू को पृथिवी में टेक कर पिण्ड देने योग्य लीपी हुई शुद्ध भूमि पर तीन कुश बिछा कर उन पर अवनेजन जल छोड़े। तदनन्तर भोजनार्थ अन्न में से एक पिण्ड बनाकर संकल्प पूर्वक कुशों पर धरे। पुनः प्रत्यवनेजन देकर जिस दिन वह पुरुष मरा हो उसी दिन रात्रि में मट्टी के पात्र में दूध और जल मिला कर किसी लकड़ी में बांध कर (प्रेतात्र०) मन्त्र द्वारा किसी वृक्ष में लटकावे। तदनन्तर दूसरे दिन से लेकर शुद्धि के दिन तक भगवद्गीता और उपनिषदादि सम्बन्धी शोक निवारक तथा संसार की अनित्यता दिखाने वाली कथा मृतक के कुटुम्बी लोग सुना करें। और चौथे दिन अस्थि संचयन कर्म करें–तीन

अथ चतुर्थदिनेऽस्थिसंचयनम् ॥

अयुजो वृद्धाः पुरुषा अस्थिसंचयनाय श्मशानं गच्छेयुः। तत्रालक्षणे कुम्भे पुरुषमलक्षणायां कुम्भ्यां च स्त्रियं संचिनुयुः। क्षीरोदकेन शमीशाखया त्रिः प्रसव्यमायतनं परिव्रजन् ओं—शीतिके शीतिकावतीति चितां प्रोक्षेत्। ततोऽङ्गुष्ठोपकनिष्ठिकाभ्यामेकैकमस्थि शब्दमकुर्वन् कुम्भेऽवदध्युः पादौ पूर्वं शिरउत्तरम्। शिरःपर्यन्तं कुम्भेऽवधाय शूर्पेण चितास्थं भस्म संशोध्य सूक्ष्माण्यस्थीनि शिरसउपरि संचित्य यत्र सर्वतआपो नाभिष्यन्देरन्नन्या वर्षाभ्यस्तत्र गर्त्तं खात्वाऽस्थिकुम्भमवदध्युः (उपसर्पमातरं०) इति मन्त्रेण—

ओम्—उपसर्पमातरं भूमिमेता—मुरुव्यचसं पृथिवीं सुशेवाम्। ऊर्णम्रदा युवतिर्दक्षिणावत एषा त्वा पातु निर्ऋतेरुपस्थात्॥ ऋ०
१०। १८। १८।

---

३ आदि विषम संख्या वाले वृद्ध पुरुष अस्थि संचयन के लिये श्मशान भूमि में जावें वहां जा कर बिना चिह्न किये घट में पुरुष के और चिह्न रहित घटिका में स्त्री के अस्थियों का संचय करें। दूध और जल मिला कर शमी-छोंकर की शाखा द्वारा सेचन करते हुए वामावृत्ति से चिता के सब ओर (ओं शीतिके०) मन्त्र पढ़ते हुए तीन बार घूमें। तदनन्तर अङ्गुष्ठ और अनामिका द्वारा एक २ हड्डी को धीरे २ उठा २ कर [जिस से परस्पर हड्डियों का शब्द न हो] घड़े में धरे। पगों की ओर से शिर तक की हड्डी क्रम से रक्खे जिस से शिर के अस्थि घड़े में ऊपर रहें। शिर तक की हड्डी घड़े में रख के सूप से चिता की भस्म को फटक कर सूक्ष्म अस्थि घड़े में ऊपर से धरे। फिर जहां सब ओर से वर्षा से भिन्न जल न भर जाता हो वहां गढ़ा खोद कर उसमें (उपसर्प०) मन्त्र

तत् उच्छ्वंचस्वेत्येतया गर्त्ते पांसूनवकिरेत्–

ओं–उच्छ्वंचस्वपृथिवीमानिबाधथाः, सूपायनास्मैभवसूपवञ्चना। मातापुत्रंयथासिचाभ्येनंभूमऊर्णुहि ॥ ऋ० १० । १८ । ११ ।

कुम्भमुखावधि गर्त्ते पूर्णे उच्छ्वचमानेत्येतां जपेत्–

ओं–उच्छ्वंचमानापृथिवीसुतिष्ठतु, सहस्रंमितउपहिश्रयन्ताम्। तेगृहासोघृतश्चुतोभवन्तु विश्वाहास्मैशरणाःसन्त्वत्र ॥१२॥

तत उत्तेस्तभ्नामीति कपालेनापिधायाऽथानवेक्षं प्रत्याव्रज्यापउपस्पृशेयुः ।

ओं–उत्तेस्तभ्नामिपृथिवींत्वत्परीमं लोगंनिदधन्मोअहंरिषम्। एतांस्थूणांपितरो धारयन्तु तेऽत्रायमःसादनातेमिनोतु ॥ ऋ० १० । १८ । १३ ॥

अथवाऽस्थिकुम्भं जलाशये निक्षिपेयुः। ततो–गृहआगत्य–भूमिमुपलिप्य कुशत्रयमास्तीर्य–एकोद्दिष्टविधिना

को पढ के घड़ा धरे और (उच्छ्वचस्व०) मन्त्र से गढ़े में माटी भरे जब घड़े के कण्ठ तक गढ़ा भर जावे तब (उच्छ्वंचमाना०) मन्त्र का जप करे। पश्चात् (उत्तेस्तभ्नामि०) मन्त्र से घड़े के मुख पर खपर धर के पीछे को न देखते हुए लौट आकर जल का स्पर्श करें। अथवा अस्थिभरे घड़ा को न गाड़े किन्तु नदी आदि किसी जलाशय में छोड़ देवे। तब घर में आकर भूमि को लीप कर वहां तीन कुश बिछा के एकोद्दिष्ट विधि से अवनेजन प्रत्यवनेजन पूर्वक सवरूप वाक्य पढ के

पिण्डदानम् । यथा—अमुकगोत्रामुकशर्मन्प्रेत—एतदवनेजनं ते मया दीयते तवोपतिष्ठताम् । इति कुशोपरि जलं निषिच्य । अमुकगोत्रामुकशर्मन्प्रेत—एष ते पिण्डो मया दीयते तवोपतिष्ठताम् । ततः—अमुकगोत्रामुकशर्मन्प्रेत एतत्प्रत्यवनेजनं मया दीयते तवोपतिष्ठताम् । इति पिण्डोपरि जलं निषिञ्चेत् । ततएकादशे दिने सर्वे सपिण्डा गृहशुद्धिं शरीरशुद्धिं च कृत्वा पञ्चगव्यं च पीत्वा नूतनं यज्ञसूत्रं यज्ञोपवीतमिति मन्त्रेण धारयेयुः । ततः कर्त्ता स्नात्वा चन्दनपुष्पधूपदीपादिभिरिदं विष्णुर्विचक्रमइति मन्त्रेण विष्णुपूजनं कुर्यात् ।

ओम्—इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधानिदधेपदम् । समूढमस्यपांसुरे ॥

एवमेव श्रीश्चत० इति मन्त्रेण लक्ष्मीपूजनम् ।

ओं—श्रीश्चतेलक्ष्मीश्चपत्न्यावहोरात्रेपार्श्वेनक्षत्राणिरूपमश्विनौव्यात्तम् । इष्णन्निषाणामुम्मइषाणसर्वलोकम्मइषाण ॥

ततो ब्राह्मणद्वारा ब्रह्मगायत्रीजपं वेदपाठं च कारयेयुः ।

ततो वृषोत्सर्गविचारः—पारस्करगृह्यसूत्रे वृषोत्सर्गः

पिण्ड देवे । तदनन्तरग्यारहवें दिन सब कुटुम्बी घर और शरीर की शुद्धि कर पञ्च गव्य पीकर नया जनेऊ (यज्ञोपवीतं०) मन्त्र से धारण करें तदनन्तर कर्म करने वाला पुरुष स्नान कर चन्दन पुष्प धूप दीपादि से (इदं विष्णुर्वि०) मन्त्र पढ़ के विष्णु का पूजन करे । इसी प्रकार (श्रीश्चते०) मन्त्र से लक्ष्मी का पूजन करे । तदनन्तर ब्राह्मणों द्वारा ब्रह्म गायत्री का जप और वेद का पाठ

तत उच्छ्वंचस्वेत्येतया गर्त्तं पांसूनवकिरेत्–

ओं–उच्छ्वंचस्वपृथिवीमानिबाधथाः, सूपायनास्मैभवसूपवञ्चना। मातापुत्रंयथासिचाभ्येनंभूमऊर्णुहि ॥ ऋ० १० । १८ । ११ ।

कुम्भमुखावधि गर्त्तं पूर्णं उच्छ्वचमानेत्येतां जपेत्–

ओं–उच्छ्वंचमानापृथिवीसुतिष्ठतु, सहस्रंमितउपहिश्रयन्ताम्। तेगृहासोघृतश्चुतोभवन्तु विश्वाहास्मैशरणाःसन्त्वत्र ॥१२॥

तत उत्तेस्तभ्नामीति कपालेनापिधायाऽथानवेक्षं प्रत्याव्रज्यापउपस्पृशेयुः ।

ओं–उत्तेस्तभ्नामिपृथिवींत्वत्परीमं लोगंनिदधन्मोअहंरिषम्। एतांस्थूणांपितरो धारयन्तु तेऽत्रायमःसादनातेमिनोतु ॥ ऋ० १० । १८ । १३ ॥

अथवाऽस्थिकुम्भं जलाशये निक्षिपेयुः। ततो–गृहमागत्य–भूमिमुपलिप्य कुशत्रयमास्तीर्य–एकोद्दिष्टविधिना

को पढ के घड़ा धरे और (उच्छ्वस्व०) मन्त्रसे गढ़ेमें माटीभरे जब घड़ेके कण्ठ तक गढ़ा भरजावे तब (उच्छ्वंचमान०) मन्त्रका जपकरे। पश्चात् (उत्तेस्तभ्नामि०) मन्त्र से घड़े के मुख पर खप्पर धर के पीछे को न देखते हुए लौट आकर जल का स्पर्श करें। अथवा अस्थिभरे घड़ा को न गाढ़े किन्तु नदी आदि किसी जलाशय में छोड़ देवे। तब घर में आकर भूमि को लीप कर वहां तीन कुश बिछा के एकोद्दिष्ट विधि से अवनेजन प्रत्यवनेजन पूर्वक सब एप वाक्य पढ के

पिण्डदानम् । यथा–अमुकगोत्रामुकशर्मन्प्रेत–एतदवनेजनं ते मया दीयते तवोपतिष्ठताम् । इति कुशोपरि जलं निषिच्य । अमुकगोत्रामुकशर्मन्प्रेत–एष ते पिण्डो मया दीयते तवोपतिष्ठताम् । ततः–अमुकगोत्रामुकशर्मन्प्रेत एतत्प्रत्यवनेजनं मया दीयते तवोपतिष्ठताम् । इति पिण्डोपरि जलं निषिञ्चेत् । ततएकादशे दिने सर्वे सपिण्डा गृहशुद्धिं शरीरशुद्धिं च कृत्वा पञ्चगव्यं च पीत्वा नूतनं यज्ञसूत्रं यज्ञोपवीतमिति मन्त्रेण धारयेयुः । ततः कर्त्ता स्नात्वा चन्दनपुष्पधूपदीपादिभिरिदंविष्णुर्विचक्रमइति मन्त्रेण विष्णुपूजनं कुर्यात् ।

ओम्–इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधानिदधेपदम् । समूढमस्यपांसुरे ॥

एवमेव श्रीश्चत० इति मन्त्रेण लक्ष्मीपूजनम् ।

ओं–श्रीश्चतेलक्ष्मीश्चपत्न्यावहोरात्रेपार्श्वेनक्षत्राणिरूपमश्विनौव्यात्तम् । इष्णन्निषाणामुम्मइषाणसर्वलोकम्मइषाण ॥

ततो ब्राह्मणद्वारा ब्रह्मगायत्रीजपं वेदपाठं च कारयेयुः ।

ततो वृषोत्सर्गविचारः–पारस्करगृह्यसूत्रे वृषोत्सर्गः

पिण्ड देवे । तदनन्तर ग्यारहवें दिन सब कुटुम्बी घर और शरीर की शुद्धि कर पञ्च गव्य पीकर नया जनेऊ (यज्ञोपवीतं०) मन्त्र से धारण करें तदनन्तर कर्म करने वाला पुरुष स्नान कर चन्दन पुष्प धूप दीपादि से (इदं विष्णुर्वि०) मन्त्र पढ़ के विष्णु का पूजन करे । इसी प्रकार (श्रीश्चते०) मन्त्र से लक्ष्मी का पूजन करे । तदनन्तर ब्राह्मणों द्वारा ब्रह्म गायत्री का जप और वेद का पाठ

स्वातन्त्र्येण व्याख्यातो न तु मरणानन्तरं कार्यइति सम्बन्धः प्रदर्शितः । अन्यप्रमाणेन मन्तव्यश्चेत्तत्करणसमयो नास्ति । एकं वृषं चतस्रो वत्सतरीरुत्सृजेदिति लिखितम् । एवं च कर्त्तु कालो नास्ति तस्माद्धोमं सामान्यविधिना कृत्वा वृषस्य गोश्च खाद्यादिना पूजनं कुर्यु । वेदिं निर्माय पञ्चभूसंस्कारान्कृत्वा—सामान्यहोमं कुर्यात्—

तत्रादौ कुशकण्डिकामारम्भक्रम —यजमानहस्तपरिमितां वेदीं कुशैः परिसमुह्य तान्कुशानैशान्या दिशि निक्षिप्य गोमयोदकेनोपलिप्य स्फ्येन स्रुवेण वा प्रागग्रप्रादेशमात्रत्रिरुत्तरोत्तरक्रमेणोल्लिख्यउल्लेखनक्रमेणानामिकाङ्गुष्ठाभ्यामृदमुद्धृत्य जलेनाभ्युक्ष्य तत्र तूष्णीं कांस्यपात्रेणाग्निमानीय स्वाभिमुखं निदध्यात् ॥ ततः पुष्पचन्दनताम्बूलवस्त्राण्यादाय । ओं—अद्य शोकान्त्यदिने कर्त्तव्यान्त्येष्टिहोमकर्मणि

करावे । तत्पश्चात् वृषोत्सर्ग का विचार यह है कि पारस्करगृह्यसूत्र में वृषोत्सर्ग कर्म का स्वतन्त्र व्याख्यान लिखा है किन्तु यह नहीं लिखा कि मरणानन्तर वृषोत्सर्ग करे अन्य प्रमाण से मन्तव्य कहा जाय तो उस के करने का समय नहीं है क्योंकि एक बैल और चार ओसर गौयें साथ में छोड़ना लिखा है सो ऐसा करने का समय नहीं इस कारण वृषोत्सर्ग के स्थान में सामान्य विधि से होम करके एक बैल और गौ का खाद्य दाना घासादि देकर पूजन करे और किसी सुपात्र ब्राह्मण को बैल गौ दोनो का दान कर देवे । होम का विधान—प्रथम वेदि में पञ्चभूसंस्कार करे—तीन कुशो से वेदि को झाड कर कुशों को ईशान कोण में फेंक कर गोबर और जल से लीप कर के स्रुवा के मूल वा स्फ्य से वेदि में उत्तर २ प्रागायत तीन रेखा करे अनामिका और अङ्गुष्ठ से रेखाओं में से मट्टी को उठा कर फेंक के वेदि में जलसेचन करे । फिर कांसे वा मट्टी के पात्र में अग्नि लाकर पश्चिमाभिमुख स्थापन करे । तत्पश्चात्—पुष्प चन्दन ताम्बूल और वस्त्रों को लेकर (ओमद्य०) इत्यादि संकल्प वाक्य पढके यजमान

कृताकृतावेक्षणरूपब्रह्मकर्म कर्तुममुकगोत्रममुकशर्माणं ब्राह्मणमेभिः पुष्पचन्दनताम्बूलवासोभिर्ब्रह्मत्वेन त्वामहं वृणे । इति ब्रह्माणं वृणुयात् । ओं-वृतोऽस्मीति प्रतिवचनम् । यथाविहितं कर्म कुर्विति यजमानेनोक्ते । करवाणीति ब्रह्मा वदेत् । ततोऽग्नेर्दक्षिणतः शुद्धमासनं दत्त्वा तदुपरि प्रागग्रान्कुशानास्तीर्य ब्रह्माणमग्निप्रदक्षिणक्रमेणानीय, ओं-अत्र त्वं मे ब्रह्माभवइत्यभिधाय । ओं-भवानीति ब्राह्मणेनोक्ते कल्पितासने उदङ्मुखं ब्रह्माणमुपवेशयेत् । ततः प्रणीतापात्रं पुरतः कृत्वा वारिणा परिपूर्य कुशैराच्छाद्य ब्रह्मणो मुखमवलोक्याग्नेरुत्तरतः कुशोपरि निदध्यात् ॥ ततः परिस्तरणम् । बर्हिषश्चतुर्थभागमादायाग्नेयादीशानान्तं ब्रह्मणोऽग्निपर्यन्तम् । नैर्ऋत्याद्वायव्यान्तं अग्नितः प्रणीतापर्यन्तम् । ततोऽग्नेरुत्तरतः पश्चिमदिशि पवित्रच्छेदनार्थं कु-

---

ब्रह्मा का वरण करे और पुष्पादि ब्रह्मा के हाथ में देवे । ब्रह्मा पुष्पादि को लेकर (वृतोऽस्मि) कहे । तब (यथावि०) यजमान कहे और ब्रह्मा (करवाणि०) कहे । तब अग्नि से दक्षिण में शुद्ध आसन चौकी आदि बिछाकर उस पर पूर्व को जिन का अग्रभाग हो ऐसे कुश बिछाकर ब्रह्माको अग्नि की प्रदक्षिणा कराके (-अस्मिन् कर्मणि त्वं मे ब्रह्मा भव) इस कर्म में तुम मेरे ब्रह्मा हो ऐसा कहकर ब्रह्मा के (भवानि) कहने पर उस आसन पर ब्रह्मा को उत्तराभिमुख बैठा कर प्रणीतापात्र को सामने रखके जल से भरके कुशों से आच्छादन कर ब्रह्मा का मुख अवलोकन करके अग्निसे उत्तर में कुशोपर प्रणीतापात्र को प्राग्र रक्खे । तदनन्तर चार मुट्ठी कुश लेकर अग्नि के सब ओर परिस्तरण करे- एक चौथाई कुश अग्निकोण से ईशानदिशा तक, द्वितीयभाग ब्रह्मा के आसन से अग्निपर्यन्त, तृतीयभाग नैर्ऋतकोण से वायुकोण पर्यन्त और चौथाभाग अग्नि से प्रणीता पर्यन्त बिछावे । तदनन्तर अग्नि से उत्तर में प्राक्संस्थ,पात्रासा-

ओं इन्द्राय स्वाहा। इदमिन्द्राय नमम। इत्याघारौ। ओं-अग्नये स्वाहा। इदमग्नये नमम। ओं-सोमाय स्वाहा। इदं सोमाय नमम। इत्याज्यभागौ॥

ततऽऽआज्येनैव। ओं भूः स्वाहा। इदमग्नये नमम। ओं भुवः स्वाहा। इदं वायवे नमम। ओं स्वः स्वाहा। इदं सूर्याय नमम। एता महाव्याहृतयः॥

(शुक्लयजुर्वेद, अध्याय २१ मन्त्र ३)

ओं त्वन्नोऽअग्ने वरुणस्य विद्वान्देवस्य हेडोऽअवयासिसीष्ठाः॥ यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषांꣳसि प्रमुमुग्ध्यस्मत्स्वाहा॥ इदमग्नीवरुणाभ्यां नमम॥ १॥

(शुक्लयजु० अध्याय २१ मंत्र ४॥)

ओं स त्वन्नोऽअग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठोऽअस्याऽउषसो व्युष्टौ॥ अवयक्ष्व नो वरुणꣳ रराणो वीहि मृडीकꣳ सुहवो नऽएधि स्वाहा॥ इदमग्नये नमम॥२॥ ओम्-अयाश्चाग्नेऽस्यनभिशस्तिपाश्च सत्यमित्त्वमयाऽअसि। अया नो यज्ञं वहास्यया नो धेहि

धार की तूष्णीं आहुति देवे और यजमान स्वयं सब त्याग बोलता जाय। आघार की दो आज्यभाग की दो इन चार आहुतियों को देकर महाव्याहृतियों की तीन सर्वप्रायश्चित्त की पांच तथा मन में प्राजापत्य एक इन सब आहुतियों को

भेषजꣳ स्वाहा ॥ इदमग्नये नमम ॥ ३ ॥
ओं ये ते शतं वरुण ये सहस्रं यज्ञियाः पाशा वितता महान्तः । तेभिर्नोऽअद्य सवितोत विष्णुर्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्काः स्वाहा ॥ इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्यो मरुद्भ्यः स्वर्केभ्यो नमम ॥४॥

शुक्लयजुर्वेद अध्याय २१ मन्त्र १८ ॥

ओम्–उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं विमध्यमꣳ श्रथाय । अथा वयमादित्य व्रते तवानागसोऽअदितये स्याम स्वाहा ॥ इदं वरुणाय नमम ॥५॥ एताः सर्वप्रायश्चित्तसंज्ञकाः ॥
ओंप्रजापतये स्वाहा । इदं प्रजापतये नमम ।

इदं प्राजापत्यम् । इति मनसा । ओमग्नये स्विष्टकृते स्वाहा ॥ इदमग्नये स्विष्टकृते नमम । ततः संस्रवप्राशनम् । आचम्य–ओमद्य शोकान्त्यदिने कृतैतदन्त्येष्टिहोमकर्मणि कृताऽकृतावेक्षणरूपब्रह्मकर्मप्रतिष्ठार्थमिदं पूर्णपात्रं प्रजापति दैवतममुकगोत्रायामुकशर्मणे ब्रह्मणे ब्राह्मणाय दक्षिणां तुभ्य-

---

त्यागों सहित देके संस्रवप्राशन तथा आचमन करके संकल्पवाक्य पढ ब्रह्माको

ओं इन्द्राय स्वाहा । इदमिन्द्राय नमम ॥ इत्याघारौ । ओं-अग्नये स्वाहा । इदमग्नये नमम । ओं-सोमाय स्वाहा । इदं सोमाय नमम । इत्याज्यभागौ ॥

ततऽआज्येनैव । ओं भूः स्वाहा । इदमग्नये नमम । ओं भुवः स्वाहा । इदं वायवे नमम । ओं स्वः स्वाहा । इदं सूर्याय नमम । एता महाव्याहृतयः ॥

(शुक्लयजुर्वेद, अध्याय २१ मन्त्र ३)

ओं त्वन्नोऽअग्ने वरुणस्य विद्वान्देवस्य हेडोऽअवयासिसीष्ठाः ॥ यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषाᳩसि प्रमुमुग्ध्यस्मत्स्वाहा ॥ इदमग्नीवरुणाभ्यां नमम ॥ १ ॥

(शुक्लयजु० अध्याय २१ मंत्र ४ ॥)

ओं स त्वन्नोऽग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठोऽअस्याऽउषसो व्युष्टौ ॥ अवयक्ष्व नो वरुणᳩ रराणो वीहि मृडीकᳩ सुहवो नऽएधि स्वाहा ॥ इदमग्नये नमम ॥२॥ ओम्-अयाश्चाग्नेऽस्यनभिशस्तिपाश्च सत्यमित्त्वमयाऽअसि । अया नो यज्ञं वहास्यया नो धेहि

घार की तूष्णीं आहुति देवे और यजमान स्वयं सब त्याग बोलता जाय । आघार की दो आज्यभाग की दो इन चार आहुतियों को देकर महाव्याहृतियों की तीन पूर्वप्रायश्चित्त की पांच तथा मन से प्राजापत्य एक, इन सब आहुतियों को

भेषजथं स्वाहा ॥ इदमग्नये नमम ॥ ३ ॥
ओं ये ते शतं वरुण ये सहस्रं यज्ञियाः पाशा वितता महान्तः । तेभिर्नोऽअद्य सवितोत विष्णुर्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्काः स्वाहा ॥ इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्यो मरुद्भ्यः स्वर्केभ्यो नमम ॥४॥

शुक्लयजुर्वेद अध्याय २१ मन्त्र १८ ॥

ओम्–उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं विमध्यमथं श्रथाय । अथा वयमादित्य व्रते तवानागसोऽअदितये स्याम स्वाहा ॥ इदं वरुणाय नमम॥५॥एताः सर्वप्रायश्चित्तसंज्ञकाः॥
ओंप्रजापतये स्वाहा। इदं प्रजापतये नमम।

इदं प्राजापत्यम्। इति मनसा। ओमग्नये स्विष्टकृते स्वाहा ॥ इदमग्नये स्विष्टकृते नमम। ततः संस्रवप्राशनम्। आचम्य–ओमद्य शोकान्त्यदिने कृतैतदन्त्येष्टिहोमकर्मणि कृताऽकृतावेक्षणरूपब्रह्मकर्मप्रतिष्ठार्थमिदं पूर्णपात्रं प्रजापति दैवतममुकगोत्रायामुकशर्मणे ब्रह्मणे ब्राह्मणाय दक्षिणां तुभ्य-

स्वामी सहित देके संस्रवप्राशन तथा आचमन करके सपरणवाक्य पढ़ ब्रह्माको

महं संप्रददे ॥ इति दक्षिणां दद्यात् ॥ ओं स्वस्तीति प्रतिवचनम् ॥ ततः—

ओं—सुमित्रिया नऽआप ओषधयः सन्तु ।

इति पवित्राभ्यां शिरः संमृज्य ।

ओं दुर्म्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान्द्वेष्टि यञ्च वयं द्विष्मः ॥

इत्यैशान्यां दिशि प्रणीतां न्युब्जी कुर्यात् । ततः स्तरणक्रमेण बर्हिरुत्थाप्य घृताक्तं कृत्वा हस्तेनैव जुहुयात् ॥

शुक्ल यजुर्वेद अध्याय ८ मन्त्र २१

ओं देवा गातुविदो गातुं वित्वा गातुमित । मनसस्पतऽइमन्देवयज्ञꣳ स्वाहा वाते धाः स्वाहा । इदं वाताय नमम ॥

तत उत्थाय घृतफलपुष्पपूर्णेन स्रुवेण पूर्णाहुतिं जुहुयात् ॥ (यजु० अध्याय ७ मन्त्र २४).

ओं मूर्द्धानं दिवोऽअरतिम्पृथिव्या वैश्वानरमृतऽआजातमग्निम् । कविꣳसम्राजम-

---

दक्षिणा देवे तथा ब्रह्मा (ओं स्वस्ति) कह कर दक्षिणा को स्वीकार करे । तदनन्तर (सुमित्रि०) मन्त्र पढ के पवित्रों द्वारा प्रणीता का जल लेकर शिर में सम्मार्जन करे तथा (दुर्मित्रि०) मन्त्र पढ के प्रणीता के शेष जल को ईशान दिशा में लौटा देवे पश्चात् जिस क्रम से बिछाये थे उसी क्रम से सब कुश उठा कर कुशों में घी लगाके (ओं देवागातु०) मन्त्र पढ़ हाथ से ही होम कर देवे। तदनन्तर उठ खड़ा होके घृत फल और पुष्पों से भरे हुए स्रुवा से (ओं मूर्द्धानं०)

तिथिञ्जनानामासन्ना पात्रञ्जनयन्ति देवाः स्वाहा ॥ इदमग्नये नमम ॥

ततः स्रुवेण भस्मानीय दक्षिणानामिकया त्र्यायुषं कुर्यात् ।

यजु० अध्याय ३ मन्त्र ६२

ओं त्र्यायुषं जमदग्नेः ॥ इति ललाटे। ओं कश्यपस्य त्र्यायुषम् ॥ इति ग्रीवायाम् । ओं यद्देवेषु त्र्यायुषम् । इति दक्षिणबाहुमूले ॥ ओं तन्नो अस्तु त्र्यायुषम् । इति हृदये ॥

ततो द्वादशे दिने एकादशाहवत्सामान्यहोमं विधाय गवादिबलीन्कृत्वा–एकं त्रीन्वा वेदपाठिनः सुपात्रान् ब्राह्मणान्भोजयेत् । यद्यस्मिन्नेव दिने सपिण्डीकरणमिच्छेयुस्तदा पारस्करगृह्यसूत्रे दृष्ट्वा कार्यम् ॥

ततोऽहरहः सुपात्रब्राह्मणाय भोजनं जलं च दद्यात् । संवत्सरान्ते क्षयाहे–एकोद्दिष्टं श्राद्धं कुर्यात् । इति ।

मन्त्र पढ के पूर्णाहुति करे और स्रुवा के मूल द्वारा लाये भस्म को दहिने हाथ की अनामिका के अग्रभाग से (त्र्यायुष०) से ललाट में (कश्यपस्य०) से कण्ठ में (यद्देवेषु०) से दहिने बाहू के मूल में और (तन्नोअस्तु०) से हृदय में भस्म लगावे । फिर बारहवें दिन ग्यारहवें दिन के कृत्य में कहे सामान्य विधि से होम कर गौ आदि की बली देकर एक वा तीन ब्राह्मणों को भोजन करावे। यदि उसी दिन सपिण्डी करण करना चाहें तो पारस्करगृह्यसूत्र के परिशिष्ट भाग में देख कर करें। आगे नित्य प्रति दिन सुपात्र ब्राह्मण को भोजन और जल दिया करें। वर्ष की समाप्ति में जिस दिन मृत्यु हुआ हो उसी दिन एकोद्दिष्ट श्राद्ध करे। मनुस्मृति में लिखा

द्वौदैवेपितृकार्येत्री—नेकैकमुभयत्रवा ।
भोजयेत्सुसमृद्धोऽपि नप्रसज्येतविस्तरे ॥
सत्क्रियादेशकालौच शौचंब्राह्मणसंपदम् ।
पंचैतान्विस्तरोहन्ति तस्मान्नेहेतविस्तरम् ॥

अथ पिंडप्रमाणम्—एकोद्दिष्टेसपिंडेच कपित्थंतुवि-धीयते ॥ इत्यन्त्येष्टिविधिः समाप्तः ॥

है कि देवकर्म के लिये दो और पितृ कार्य में तीन वा दोनों में एक २ ब्राह्मण को श्रीमान् पुरुष होतो भी भोजन करावे किन्तु बड़ी पात श्राद्ध के निमित्त कदापि न करे। सत्कार, देश, काल, शुद्धि और ब्राह्मण की सुपात्रता इन पांचों को बहुतों को भोजन कराना नष्ट करता है। इस से बहुतों को भोजन कराने की चेष्टा न करे। एकोद्दिष्ट और सपिण्डीकरण में कपित्थ के प्रमाण छोटा पिण्ड बनाना चाहिये॥ इति संस्कारमार्त्तण्डग्रन्थ समाप्त ॥

अथ केशान्तसंस्कारे विशेषः ॥

केशान्तःषोडशेवर्षे ब्राह्मणस्यविधीयते ।

राजन्यबन्धोर्द्वाविंशे वैश्यस्यद्व्यधिकेततः ॥ मनु:० ॥

लौकिकेऽग्नौ होमविधिः । देशकालौ स्मृत्वा केशान्तकर्माहं करिष्यइति संकल्पः । ब्राह्मणत्रयभोजनादेः सर्वस्य कर्मणश्चूडाकर्मणि यो विधिरुक्तः स सर्वएवात्र तथैव कार्यः । इयांस्तु भेदः-उदकासेकमन्त्रे-केशान्वपेत्यत्र-केशश्मश्रू वप-इत्यूहः । यथा-उष्णेन वाय उदकेनेह्यदिते केशश्मश्रू वप । ततो यत्क्षुरेणेति क्षुरपरिग्रहणमन्त्रे-यत्क्षुरेण०-प्रमोषीर्मुखम् । इति मुखशब्दोऽधिकः पठनीयः ।

भा०-अब केशान्तसंस्कार की विशेषता लिखते हैं । मनुस्मृति में लिखा है कि ब्राह्मण का सोलहवें क्षत्रिय का २२ वें और वैश्य का चौबीसवें वर्ष में केशान्तसंस्कार करे केशान्तसंस्कार में डाढ़ी मूछ और बगलें तथा शिर के सब बाल प्रथम ही बनवाये जाते हैं । डाढ़ी मूछ और बगलों के बाल बनवाने के आरम्भ ही को केशान्तसंस्कार कहते हैं । चूडाकर्म के तुल्य लौकिक अग्नि में ही यहां भी होम होता है । देशकाल का स्मरण करके केशान्तकर्म का संकल्प करे । आगे तीन ब्राह्मणों को भोजन कराने से लेकर केशान्त के सब कर्म का विधान चूडाकर्म में कहे अनुसार ही करना चाहिये । इसी से यहां फिर नहीं लिखते । भेद या विशेषता यह है कि-गर्म और ठण्ढा जल मिलाने के (उष्णेन वाय०) मन्त्र में (केशान्वप) के स्थान में (केशश्मश्रूवप) ऐसा ऊह करे । तत्पश्चात् (यत्क्षुरेण०) इस छुरा लेने के मन्त्र में (यत्क्षुरेण०-प्रमोषीर्मुखम्) ऐसा बोले अर्थात् मुख शब्द को अधिक बोले । और मुख सहित शिर के चारो ओर प्र-

श्रीहरिः

प्रियतम धर्म सभा के नियम ॥

---

१ राम नाम का भजन करना ॥
२ विद्या पढ़ना ॥
३ सत्य बोलना, ॥
४ देश को सुधारना, ॥
५ विधि पूर्वक पिंड तर्पण मात्र से मृत पितरों का श्राद्ध करना ॥
६ मद्य मांसादि अशुद्ध पदार्थ न खाना, ॥
७ श्रद्धा से मूर्त्ति पूजन करना, ॥
८ ईश्वरकृत, तथा ऋषिकृत ग्रन्थों को मानना ॥
९ बाल विवाह न करना, ॥
१० गुण जाति संपन्न योग्य ब्राह्मण को मानना ॥
११ चौर्य्यादि न करना, ॥
१२ विधवा को ब्रह्मचर्य में रखना, ॥
१३ अपने जैसा सुख दुःख सब का जानना ॥
१४ अच्छेगुण को संसार में फैलाना ॥
१५ ईश्वराकार वृत्ति से मोक्ष को पाना ॥
१६ उक्ति युक्ति सृष्टिक्रम के विरुद्ध काम न करना ।

प्रि० ध० स० शिकारपुर (सिंध)

मूल्य घटाये हुए पुस्तकों का सूचीपत्र—

आर्यसिद्धान्त पूर्व का छपा दश भाग १२० अङ्क इकट्ठा लेने पर सब होगा पृथक् २ प्रति भाग ।।=) उपनिषद्भाष्य—ईश ≡) केन ≡) कठ ।।=) प्रश्न मुण्डक ।≡) माण्डूक्य ≡) तैत्तिरीय ।।—) ऐतरेय ।—) श्वेताश्वतर ।।—) इन उपनिषदों पर संस्कृत और नागरीभाषा में अब तक अच्छा भाष्य हो चुका ८ उपनिषद् भाष्य इकट्ठे लेने वालों को ३।।) मनुस्मृति का संस्कृत तथा नागरी भाषा में अत्युत्तम भाष्य का अलभ्य आनन्द पु० देखने से होगा, ३ अध्याय की १ प्रथम जिल्द मूल्य २।।) द्वितीय जिल्द ६ अध्याय भगवद्गीता का ठीक शुद्ध २ संस्कृत नागरी भाषा में भाष्य तुलसीराम का गीतासंग्रह ।—) व्याकरण की पुस्तकें—*अष्टाध्यायी मूल भाषाटीका १।) मूल (मोटा अक्षर) ।) गणरत्नमहोदधि गणपाठ की संस्कृत व्याख्या और श्लोक तथा अकारादि शब्द सूची सहित १) धातुपाठ [शब्दसिद्धि के कृत्य भी ।) वैदिककर्मकाण्ड—पुण्याहवाचन —) दर्शपौर्णमासेष्टिपद्धति [श्रौतकर्म दुर्लभ पुस्तक]।।) स्मार्त्तकर्मपद्धति ।) पञ्चमहायज्ञ —) इष्टिसंग्रह ।) ≡।।) पतिव्रतामाहात्म्य मू० ≡)।। सद्विचारनिर्णय —) पुत्रकामेष्टिपद्धति (पुत्रहोने विधि)है —)। आयुर्वेदशब्दार्णव कोष ।।) भर्तृहरिनीतिशतक भाषाटीका =)।। वैराग्यशतकभाषाटीका ≡) यमयमीसूक्त का अच्छा ठीक २ व्यवस्थायुक्त संस्कृत भाषा भाष्य —)।। सत्यभास्कर (छन्दों में पाषाणपूजा खण्डन) =) विदुरनीति मूल टिप्पणी सहित =) सदुपदेश भजन आधा पैसा ।) सैकड़ा आरती नित्य वा उत्सव पर गाने के लिये ।) में दो आर्यसमाज के नियम १ सैकड़ा । व्याख्यान का सामान्य विज्ञापन =) प्रति सैकड़ा । अबलाविनय (स्त्री शिक्षा) ।)।। धर्मबलिदान आह्ला—लेखरामवध =) यज्ञोपवीतशुद्धसमाधि — गङ्गादितीर्थत्वविचार =) कन्यासुधार —) संगीतसुधासागर (भजन) —) वेश्या लीला १ भाग)।। आर्यसमाज के नियमोपनियम)। धर्मलक्षणवर्णन ≡) पुनर्जन्म [पुनःजन्महोता है यह सिद्ध किया गया है] =)।। स्थावरमेंजीव विचार —) देवना गरीवर्णमाला)। *संगीतरत्नाकर =) *भजनामृतसरोवर =) गाज़ी मियां की पूजा) सभाप्रबन्ध ≡) शास्त्रार्थबुर्जा —) सत्यसंगीत)। स्वर्गमेंसब्जेक्टकमेटी —)।। ऐतिहा सिकनिरीक्षण =) सुमतिसुधाकर ≡)।। नीतिसार —) पाखण्डमतकुठार—) ललित विनोद =) नलोपाख्यान —) गणितसारग्रह —) चाणक्य भाषाटीका —) *शान्तिका घर =) *सुमतिसुधाकर —) संस्कृतप्रवेशिका =)।। *बारहमासा (भारतविलाप) महर्षिवियोगशोक —) बदनिविसूचिका)।। दशनियमशिखरिणी में)। *सत्यार्थप्रकाश २) आदि स्वामी जी कृत सब पुस्तक यहां मिलते हैं बड़ा सूची मंगाकर देखिये

पता—सत्यव्रतशर्मा सरस्वतीप्रेस—इटावा (पश्चिमोत्तरदेश)